

तन्त्र साधना

डॉ॰ नारायणदत्त श्रीमाली







मयूर पेपरबैक्स

Suman

तन्त्र-साधना

प्रख्यात ज्योतिषी और
तन्त्र-साहित्य के गम्भीर अध्येता
डॉ० नारायणदत्त श्रीमाली का यह पुस्तक
'तन्त्र-साधना' उनकी पिछली पुस्तक
'लक्ष्मी-साधना' की ही तरह
'तन्त्र विद्या' में रुचि रखने वाले
पाठकों के लिए प्रस्तुत है।

सामान्य पाठकों का ध्यान में रखकर
तन्त्र-विद्या के अन्तर्गत तमाम गूढ़ विषयों को
अत्यन्त सरल और सुबोध ढंग से बताने वाली
यह हिन्दी में पहली पुस्तक है,
जिसका उपयोग प्रत्येक वर्ग और
प्रत्येक उम्र के पाठकों के लिए है।

मूल्य : ३.००

विषय-सूची



मयूर पेपरबैक्स
२३, दरियागंज, नयी दिल्ली-११०००२

तन्त्र-साधना

डॉ॰ नारायणदत्त श्रीमाली

Juman Jen Gupta

प्रयोग
जाता है,
साधना किस
ही होनी चाहि

मयूर पेपरबैक्स
(के० एल० मलिक ऐण्ड संस
प्रा० लि०)
२३, दरियागंज, नयी दिल्ली-११०००२
द्वारा प्रकाशित

•

संस्करण १९७५ मूल्य : ३.००

•

सरस्वती प्रिंटिंग प्रेस,
मौजपुर, शाहदरा,
दिल्ली-११००५३ द्वारा मुद्रित

स
१०००२

दो शब्द

अविद्यानामन्तस्तिमिरमिहिरोद्‌द्वीपनकरी
जडानां चैतन्यस्तबकमकरन्द स्रुतिझरी।
दरिद्राणां चिन्तामणिगुणनिका जन्म जलधौ
निमग्नानां दंष्ट्रा मुररिपुवराहस्य भवती ॥
(सौन्दर्य लहरी)

तंत्र-साधना पर मैं काफी समय से लिख रहा हूँ, और शीघ्र ही एक वृहदाकार ग्रंथ पाठकों को भेंट करूंगा, जो अपने-आप में एक उपलब्धि होगी, और उसमें वे रहस्य पहली बार उजागर होंगे जो अभी तक सर्वथा गोपनीय हैं, और जो सहज ही बताये नहीं जाते, पर इतने बड़े और मूल्यवान ग्रन्थ को खरीद सकना आम आदमी के बस की बात नहीं होगी, इसीलिए मैंने चाहा कि यह लघु पुस्तक पाठकों के समक्ष प्रस्तुत हो। समय की कमी और व्यस्तता के कारण यह कार्य मेरे अकेले के बश का नहीं था, अतः मेरे विचारों को व्यवस्थित रूप देने का भार मैंने श्री नन्दकिशोर शर्मा को दिया। उन्होंने मेरी सामग्री को यहाँ सम्पादित करके प्रस्तुत किया है।

तंत्र अपने-आप में दुधारी तलवार है, जिसका सही ढंग से प्रयोग न होने पर, या त्रुटि हो जाने पर साधक का ही अहित हो जाता है, इसीलिए इस क्षेत्र में बार-बार कहा जाता है कि तंत्र-साधना किसी योग्य गुरु के सान्निध्य में और उसकी देख-रेख में ही होनी चाहिए।

चिरायु नन्दकिशोर ने मेरी डायरी के कुछ पृष्ठ इसमें हठ करके दे दिये हैं, यद्यपि मैं ऐसा चाहता नहीं था, पर बालहठ, बालहठ ही होता है, अस्तु । डायरी के माध्यम से कुछ तंत्र-मंत्र भी इस पुस्तक में जा रहे हैं, पर इस सम्बन्ध में स्पष्ट शब्दों में कहा जाता है, कि बिना गुरु की सलाह या सान्निध्य के इन मंत्रों का प्रयोग न करें । ऐसा करने पर यदि किसी प्रकार की किसी को हानि हुई तो इसका पूर्ण जिम्मेदार वह स्वयं होगा । दूसरों को हानि पहुँचाने या दुरुपयोग करने या स्वार्थ-साधन के लिए भी इन मंत्रों या तंत्रों का उपयोग न करे । ऐसा करने पर उनके कार्य में उन्हें सिद्धि प्राप्त नहीं होगी । किसी भी व्यक्ति को हानि पहुँचाने या कोई भी ऐसा कार्य जो सरकारी कानून के खिलाफ हो, करने से जो परिणाम होंगे उसकी जिम्मेवारी करने वाले व्यक्ति की होगी; इस सम्बन्ध में लेखक या प्रकाशक की किसी भी प्रकार की कोई जिम्मेवारी नहीं होगी ।

पुस्तक में दिये गये मंत्र, प्राचीन प्रामाणिक मान्य ग्रन्थों से लिये गये हैं, अथवा इस सम्बन्ध में ज्ञान रखने वाले व्यक्तियों अथवा साधकों से प्राप्त किये गये हैं, अतः इस सम्बन्ध में भी कार्य करने पर सिद्धि मिलने या न मिलने की जिम्मेवारी लेखक की नहीं होगी ।

जहाँ तक मेरा व्यक्तिगत प्रश्न है, मैं लगभग तांत्रिक कार्य नहीं करता, अतः इस सम्बन्ध में कार्य करने के लिए भी मुझे बाध्य न करें ।

परोपकारी, ईमानदार तथा भले व्यक्ति इन मंत्रों का उपयोग कर लाभ उठा सकते हैं । जिन व्यक्तियों को इस प्रकार के कार्यों में विश्वास नहीं है वे भी इस पुस्तक का उपयोग न करें ।

इस सम्बन्ध में यह पहली पुस्तक है, जिसमें तंत्र पर अधिकार-पूर्वक विवेचना की गयी है तथा विषय का प्रतिपादन किया है । मुझे विश्वास है कि पाठक इस क्षेत्र में ज्ञान अर्जित कर लाभान्वित होंगे ।

जिन्हें इस विषय में रुचि है, अथवा और गहराई में जाना चाहते हैं उन्हें मेरे सद्यः प्रकाशित ग्रन्थ का अध्ययन करना चाहिए—जिसमें अठारह सौ तंत्रों व मंत्रों का विवेचन, प्रयोग, विधि व सफलता प्राप्त करने के लिए संकेत दिये गये हैं ।

मेरा एक ही लक्ष्य है कि कम-से-कम मूल्य में जन-साधारण को भारत की इन प्राचीन विद्याओं यथा ज्योतिष, फलित, सामुद्रिक शास्त्र, मंत्र-शास्त्र, तंत्र-शास्त्र का ज्ञान कराऊँ । इन विद्याओं का पुनरुत्थान करूँ तथा इन विद्याओं को सही रूप में विश्व के सामने प्रतिष्ठित करूँ । पाठकों का बहुत बड़ा संबल मुझे रहा है, जो नित्य प्रति आने वाले सैकड़ों पत्रों से स्पष्ट है । यह पुस्तक यदि उनका कुछ भी हित कर सकी तो मैं अपने श्रम का सार्थक समझूँगा ।

सी-एफ १४, हाईकोर्ट कालोनी — नारायणदत्त श्रीमाली
जोधपुर (राजस्थान)

आधुनिक समाज में तन्त्र की उपयोगिता

तन्त्र सार्वजनिक धर्म है। तंत्र की सार्वजनिकता एक और भी कारण से वैशिष्ट्यपूर्ण है। साधन-मार्ग के सभी परिचित मार्गों का एक अपूर्व समन्वय तन्त्र-साधना में दिखाई देता है। ज्ञान, भक्ति, योग, कर्म आदि सभी मतों की साधना का तन्त्र में समावेश है और इन सबों का इस तंत्र-शास्त्र के भीतर पूर्ण प्रतिष्ठित स्थान हैं। वास्तव में ये सब एक-दूसरे के विरुद्ध नहीं वरन् एक-दूसरे के परिपूरक हैं। इन सभी का तन्त्र में प्रतिपादन हुआ है। साधना की अग्रगति में आनुष्ठानिक कर्मादिकों का जैसे गुरुत्व है वसे ही हठयोग और समाधियोग के भी महत्व हैं। श्रद्धा-भक्ति के मार्ग से साधक अद्वैत ज्ञान के राज्य में प्रतिष्ठित होते हैं। तन्त्र की यह समन्वय-धर्मिता युगावतार श्री रामकृष्ण की साधना में प्रत्यक्ष रूप से प्रमाणित हो चुकी है।

वर्तमान भौतिकवादी सभ्यता के युग में मनुष्य से निवृत्ति-मार्ग में आध्यात्मिक उन्नति की प्रचेष्टा प्रायः असंभव है। इसलिए प्रवृत्ति-मार्ग में तन्त्र की उपासना निहित हो चुकी है। तन्त्र-साधना द्वारा साधक भोग और मोक्ष दोनों प्राप्त करता है।

कुलार्णव तन्त्र में कहा है :—

योगी चेन्नैव व भोगी स्याद् भोगी चेन्नैव योगवित्।
भोग योगात्मकं कौलं तस्मात् सर्वाधिकः प्रिये॥

साधारण मनुष्य को भोग न होने से त्याग कसे आयेगा? सिर्फ कंठाग्र उपदेश के द्वारा इंद्रियासक्ति से मनुष्य को निवृत्त

करने की आशा सिर्फ दुराशा ही प्रमाणित होगी। इसीलिए तंत्र में पंच मकारों को साधना के अंग के रूप में स्वीकार किया गया है। जो लोग मोहान्ध बनकर और विचार न करके इन्द्रिय-भोग के भीतर लिप्त हैं, वे साधना का अंग कहकर उन सबों का व्यवहार करेंगे। शायद जनसाधारण को धर्म के मार्ग में प्रलोभित करना भी पंच मकार की साधना का एक उद्देश्य रहा हो। अध्यात्म धर्म और उपासना लोगों के दिन-प्रतिदिन के जीवन से कोई अलग वस्तु नहीं हैं, वरन् ये प्रतिदिन के सरल जीवन-यात्रा की तरह आवश्यक हैं—इसका ज्ञान तन्त्र-शास्त्र ने मनुष्य के भीतर पैदा किया।

जगत्-कारण महामाया के मातृत्व-भाव का प्रचार और साथ-साथ सभी स्त्री-मूर्तियों पर एक शुद्ध, पवित्र भाव को लाना एक और उद्देश्य है। तंत्रशास्त्र के विद्वानों ने इस बात का प्रचार किया कि नारी का शरीर पवित्र तीर्थ-स्वरूप है। नारी पर मनुष्य बुद्धि का त्याग करके हर वक्त दैवी बुद्धि रखोगे और जगदम्बा की विशेष शक्ति के प्रकाश की भावना करके हर समय स्त्री-मूर्ति पर भक्ति और श्रद्धा का प्रदर्शन करोगे। कभी नारी की निंदा या नारी पर प्रहार नहीं करोगे।

'यस्याः अंगे महेशानि सर्वतीर्थानि सन्ति वै।'

—पुरश्चरणोल्लास तन्त्र (१४२-पटल)

'शक्तौ मनुष्यबुद्धिस्तु यः करोति वरानने।
न तस्य मंत्रसिद्धिः स्याद्विपरीतं फलं लभेत्॥'

—उत्तर तन्त्र (२रा-पटल)

'स्त्रियो देवाः स्त्रियः पुण्याः स्त्रिय एवं विभूषणम्।
स्त्री द्वेषो नैव कर्त्तव्य स्तासु निन्दा प्रहारकम्॥'

—मंडमाला तन्त्र (५म-पटल)

तन्त्र मत के अनुसार साधना में नर और नारी का अधिकार समान है। नारी से नर श्रेष्ठ है इसे तन्त्र नहीं मानता। साधा-

रणतः अकेले नर या नारी की मुक्ति असंभव है। सिद्धि के मार्ग में और साधना के हर अंग में नर और नारी के संयुक्त कर्म करने का विधान है। कहीं-कहीं तो नारी की महत्ता और श्रेष्ठता प्रमाणित की गई है। नारी ही शक्ति है। कुमार और कुमारी की अवस्था में मनुष्य असम्पूर्ण है। साधना में उनका अधिकार नहीं है। शादी होने के बाद ही उनकी पूर्णता मानी गई है और साधन-कर्म में अधिकार पैदा होता है।

तंत्र मत में नर-नारी के संगम और प्रणय के विधि-विधान अत्यन्त उदार हैं। जब यह देखा जाय कि आपस में प्रीति का आकर्षण कम हो गया है तो तभी समझना चाहिए कि दोनों के व्यावहारिक जीवन में विराम की अवस्था आ गई है। तब फिर दोनों ही अपनी पसंद के अनुसार पात्र या पात्री चुन सकते हैं। एक साधक को एकाधिक शक्ति का तथा एक साधिका को एक से अधिक भैरव का ग्रहण करना तंत्रशास्त्र में विहित है।

युवावस्था में हम लोगों की आसक्ति नारी की ओर सहज और स्वाभाविक रूप से होती है। उस आकर्षण से अपने मन को जबरदस्ती हटाने की सलाह तंत्र-शास्त्र नहीं देता। अगर स्त्री-संग सीमित मात्रा में ही किया जाय तब मनुष्य के अध्यात्म-मार्ग की उन्नति अनायास होती है। सच्चे साधकों में लम्पटता का दोष नहीं होता। मनुष्य इन्द्रिय-सुख के लोभ में ही उलझा रहता है। जिन लोगों ने शरीर की आसक्ति को नहीं छोड़ा है उन लोगों के पास संयम का उपदेश देना निरर्थक है। इसी तन्त्र-शास्त्र के अन्तर्गत ऐसे साधन का भी विधान है जब बिना स्त्री-संग के भी सिद्धि-लाभ किया जा सकता है।

मनुष्य जीवन के प्रारम्भ से लेकर अन्त तक सभी में प्राकृतिक नियम के अनुकूल है। इसीलिए शरीर को सुखाने और कष्ट देने वाले साधन की असारता का तन्त्र में वर्णन किया गया है। वास्तव में भोग और योग एक ही प्रकृतिगम क्षमता के दो भाग

हैं। जीव-लीला का विकास इसीलिए तन्त्र के साधन-क्रम में साफ है।

इन्हीं समताओं के कारण मेरा विचार है कि आधुनिक मशीनी सभ्यतापूर्ण समाज की विचारधारा के साथ तन्त्र-शास्त्र की विचारधारा का काफी मेल है। तन्त्र-शास्त्र में भी कलियुग के मनुष्य के लिये एक ही तन्त्रोक्त साधन-पद्धति का विधान है। 'कुलार्णव तंत्र' में कहा गया है कि—सत्ययुग में श्रुति के विधान के अनुसार, त्रेता में स्मृति के अनुसार, द्वापर में पुराण के अनुसार और कलियुग में केवल आगम (तन्त्र-शास्त्र) के अनुसार ही धर्म करना कल्याणप्रद है।

'कृते श्रुत्युक्ताचार स्त्रेतायां स्मृति संभवः।
द्वापरे तु पुराणोक्तं कलौवागम केवलम्॥'

'विष्णुयामल' में कहा गया है —

'आगमोक्त विधानेन कलौ देवान् यजेत् सुधीः।
नहि देवाः प्रसीदन्ति कलौ चान्य विधानतः॥'

'महानिर्वाण तन्त्र' में कहा गया है —

'सत्यं सत्यं पुनः सत्यं सत्यं सत्यं मयोच्यते।
बिनाह्यागम मार्गेन कलौ नास्ति गतिः प्रिये॥'

वास्तविक रूप में, वर्तमान समाज में पंच मकार में लिप्त मानव-समुदाय को देखकर यही विचार आता है कि तन्त्र-शास्त्र के अनुसार साधना-पद्धति का आधुनिक युग में ही विशेष प्रयोजन है। तांत्रिक साधना में नैतिक बन्धन की आवश्यकता न होने के कारण भी यह काफी उदार है। नीति के बन्धन के कारण अन्यान्य साधना की पद्धति में प्रवृत्ति के साथ प्रकृति का विरोध है। इसी कारण आडम्बर और मिथ्याचरण का समाज में बोल-बाला हो रहा है।

साधना के आधार

परम पूज्य श्रद्धेय नारायणदत्त जी श्रीमाली से मेरा परिचय लगभग बारह-पन्द्रह वर्षों से है, और तब से उनकी महती कृपा निरन्तर मुझे प्राप्त होती रही है। पर इन पन्द्रह वर्षों में भी मैं उनके जीवन के बारे में नहीं के बराबर जान सका हूँ।

कुछ समय पहले ज्योतिष-परिषद् ने डॉ० नारायणदत्त श्रीमाली को अभिनंदन-ग्रंथ भेंट करने का निश्चय किया था, और उसमें सबसे कठिन कार्य था, पूज्य पंडितजी की जीवनी ज्ञात कर लिपिबद्ध करना, परिषद् ने यह कार्य मुझे सौंपा, और मुझसे हामी भरवा ली, पर मैं यह जानता था कि पूज्य गुरुजी से उनकी जीवनी के बारे में जानना कितना कठिन है। वे सब कुछ बताने को तैयार हो जाते हैं, बताते भी हैं, पर जब भी उनकी जीवनी के बारे में प्रश्न उठता है। वे मौन साध लेते हैं, ज्यादा दबाव पड़ता है तो यह कहकर किनारा काट लेते हैं कि—मिट्टी के एक कण की क्या जीवनी हो सकती है; और जो हम जीवनी लिखते हैं, वह तो उसके अन्नमय कोष का विवरण है, प्राणमय कोष को लिपिबद्ध करना क्या सहज संभाव्य है और प्रश्नकर्ता स्वयं निरुत्तर हो जाता है।

उनके बारे में थोड़ी-बहुत जानकारी हमें थी, कुछ विशेष जानकारी तब मिली, जब गुरुजी के गुरु भाई इनसे मिलने के लिए यहाँ पधारे, और दो-तीन दिन तक यहाँ विश्राम किया। उनका और पूज्य गुरुजी का जितना साथ रहा, उसका विवरण उन्हीं से मिला, और फिर फुरसत में मैंने उसे लिपिबद्ध कर लिया।

मेरे ऊपर पूज्या माताजी का मातृवत् स्नेह रहा है। अगर मैं यह कहूँ कि मुझ पर मेरी जननी का ऋण कम है, और पंडितजी की धर्मपत्नी पूज्या माताजी का ऋण उनसे कहीं बढ़ा-चढ़ा है, तो कोई अत्युक्ति नहीं होगी। उनका स्नेह-हस्त सदैव मेरे सिर पर रहा है। पिछले वर्षों पर जब मैं दृष्टि डालता हूँ तो पाता हूँ कि उनका निरन्तर संबल मेरे साथ रहा है। इन गत वर्षों में मैं चिंतित भी रहा होऊंगा, खिन्न और उदास भी हुआ होऊँगा, मुझसे जाने, अनजाने न मालूम कितनी भूलें, कितनी गलतियाँ और कितने अपराध हुए होंगे, पर माताजी के चेहरे पर मैंने इन सबकी कोई रेखा नहीं देखी। उनका स्नेह पूर्ववत रहा, अपितु समय पाकर बढ़ता गया। जब भी मैं पूजा में बैठता हूँ, तो माँ का सहज मुस्कराता करुणा और प्रेम से ओत-प्रोत चेहरा मेरे सामने साकार हो उठता है; मेरा सिर स्वयमेव उनके चरणों में झुक जाता है। करुणा, दया, प्रेम और स्नेह की साकार मूर्ति हैं वे, यह कहने में कोई अत्युक्ति नहीं, और एक ही तमन्ना है, प्रभु से एक ही इच्छा है कि यदि उनकी कृपा मुझ पर हो तो आगामी जीवन में भी मुझे यही माँ मिले। इसी प्रकार स्नेह और करुणा की सरिता मेरे सामने प्रवाहित रहे। कितना सौभाग्यशाली हूँ मैं, कि पंडित जी का सामीप्य मिला है और माँ का कारुण्य, स्नेह और ममत्व।

पंडितजी का वर्तमान जितना गरिमामय है, भूतकाल इससे भी ज्यादा गौरवमय। यद्यपि यह स्पष्ट है कि पंडितजी अपनी प्रशंसा के प्रति अत्यन्त कृपण हैं; जब भी उनकी प्रशंसा की कहीं चर्चा छिड़ती है, और वे वहाँ उपस्थित होते हैं, तो उठ जाते हैं। वे मितभाषी हैं, सहज और सौम्य प्रकृति के धनी हैं, ज्योतिष, फलित, मंत्र तथा तंत्र-शास्त्र के प्रति उनकी अगाध श्रद्धा है। जीवन में जितने अधिक उतार-चढ़ाव, संघर्ष, घात-प्रत्याघात उन्होंने सहे हैं, उतने कम लोगों ने सहे होंगे। जीवन के तारुण्य-काल में उन्होंने नौकरी छोड़कर जंगलों की राह इसलिए पकड़

ली थी कि सच्चे साधुओं से साक्षात्कार हो सके, ज्योतिष तथा मंत्र-तन्त्रों के प्रति प्रामाणिकता आ सके और कुछ ऐसे दुर्लभ क्षण, दुर्लभ ज्ञान को जन-साधारण के सामने रखा जा सके, जिससे आम आदमी लाभान्वित हो सके। डॉ० श्रीमाली की सद्यःप्रकाशित पुस्तक 'लक्ष्मी साधना' में मैंने इस महापुरुष के जीवन के कुछ क्षणों को उजागर करने का प्रयत्न किया है।

पूज्य गुरुजी ने अपने जीवन के कई वर्ष जंगलों में व्यतीत किये हैं। प्रकृति को वे 'आद्या मां' कहते हैं। जब भी उन्हें अवकाश मिलता है, वे प्रकृति की गोद में चले जाते हैं, वहाँ जाकर उन्हें सच्चा सुख मिलता है, साधु-सन्तों का सामीप्य उन्हें रुचिकर प्रतीत होता है।

जीवन का वह समय जिसे यौवनकाल कहा जाता है, जो समय खेलने-खाने और मौज करने का होता है, ऐश-आराम, भोग-विलास में डूबने का होता है, डॉ० श्रीमाली ने वे क्षण घर से विमुख होकर जंगलों में व्यतीत किये हैं, कठोर संघर्ष और श्रम किया है, भूखे-प्यासे रहकर मंत्रों-तंत्रों को प्राप्त करने की कठोर साधना की है, न तन की चिन्ता रखी और न सुख की। एक ही धुन रही, कि इन साधुओं, महर्षियों से इस दुर्लभ ज्ञान को सही रूप में प्राप्त किया जाय, जिसकी वजह से भारत पूरे विश्व में गौरवान्वित है; और डॉ० श्रीमाली के शब्दों में 'मेरे ऊपर प्रभु की असीम कृपा रही कि मैं उन अलभ्य महर्षियों का सामीप्य पा सका और कुछ सीख सका।'

प्रश्न था, उनके अतीत के जीवन में झांका जाय, उन्हें कागजों पर उतारा जाय, पर यह कार्य सर्वाधिक दुष्कर था। काफी प्रयत्न करने पर भी जब कुछ हाथ न लग सका, तो मैं निराश हो गया। एक तो पंडितजी जरूरत से ज्यादा व्यस्त रहते हैं, दिल्ली, बंबई, कलकत्ता इधर-उधर आना-जाना बना ही रहता है। जब वे जोधपुर होते हैं, तो बाहर से आने-जाने वालों का तांता लगा ही

रहता है। भारतीय ज्योतिष अध्ययन-अनुसंधान—केन्द्र का गुरुत्तर भार वे सौजन्यवश उठाये हुए हैं। आर्थिक दृष्टि से इससे उनका कोई सम्बन्ध नहीं। उनका जीवन अधिकाधिक लोकोपयोगी हो गया है। वे गृहस्थ होते हुए भी सार्वजनिक हो गये हैं। उनका साधना-कक्ष प्रातः छः बजे खुलता है, नित्य-कर्म से निवृत्त होकर वे पूजा-अर्चना के लिए बैठ जाते हैं, और साथ-ही-साथ बाहर से आये नवागन्तुकों से भेंट, बातचीत आदि भी चलती रहती है। दोपहर डेढ़-दो बजे भोजन कर सायं पाँच बजे तक केन्द्र का कार्य देखते हैं। शाम को पुनः मिलने-जुलने वालों से सत्संग का क्रम चलता है। लगभग सात बजे से साढ़े आठ बजे तक सायं पूजा से से निवृत्त हो जाते हैं। रात्रि को साढ़े-नो बजे भोजन तथा इसके बाद वे स्वाध्याय-कक्ष में चले जाते हैं, और साधना में प्रवृत्त हो जाते हैं। कब तक साधना चलती है, इसका किसी को पता नहीं; रात्रि को कब सोते हैं, तथा पुनः कब उठते हैं, यह अभी तक रहस्य है और साधक की गति अगम होती है, इसे कौन जान सकता है।

हां, तो मेरा काफी समय से प्रयत्न चल रहा था, कि पूज्य पंडितजी से उनकी जीवनी ज्ञात कर लिपिबद्ध करूं, पर यह मैं ही जानता था, कि कितना कठिन कार्य है। वे सब कुछ दे सकते हैं, पर अपने जीवन के उन वर्षों का, जो साधना में व्यतीत हुए हैं, उच्चस्तरीय महर्षियों के साथ व्यतीत हुए हैं, बताने और लिखाने में संकुचितता बरतते हैं। बार-बार आग्रह करने पर कह उठते हैं, क्या होगा यह सब लिखाने में, ज्यादा लोग जानेंगे, ज्यादा लोग आयेंगे, और अधिक व्यस्त रहना पड़ेगा। वर्तमान साधना में व्यवधान आएगा —और इस नश्वर देह का प्रचार से सम्बन्ध क्या, और बातों का रुख दूसरी ओर मोड़ लेते हैं। इसी प्रचार-प्रसार के भय से पंडितजी ने उन सारे कागजों-पत्रों को जला दिया, जिसमें पंडितजी की थोड़ी भी प्रशंसा थी। उन साधु-

सन्त हुए पत्र-व्यवहार को भस्म कर डाला और उन डायरियों को नष्ट कर दिया, जिनमें उन्होंने उन क्षणों को साकार किया था।

पंडितजी काफी समय से डायरी लिखते हैं, कहीं खुलकर तो कहीं प्रतीकात्मक रूप में। मैंने उन डायरियों को ढूंढने का काफी प्रयत्न किया, तो निराशा ही हाथ लगी; और जब एक दिन विनोद के क्षणों में उन डायरियों के बारे में पूछा, तो ज्ञात हुआ कि अहं की भावना जाग्रत न हो जाय, इसलिए डायरियों को भस्म के रूप में परिणत कर दिया—मैं निराश हो गया था, और इन्हीं निराशा के क्षणों में एक दिन अपनी व्यथा को मां के सामने स्पष्ट कर दिया। मेरी घुमड़न आँसुओं के रूप में प्रवाहित होते देख वे दयार्द्र हो उठीं, और हम दोनों—मां और मैंने—ने पंडितजी के पुराने ग्रन्थों व कागज-पत्रों को टटोलना-ढूँढना शुरू किया, और इसी प्रयत्न में पंडितजी की डायरी के कुछ पृष्ठ हाथ लग गये जो साधना-वर्षों का साक्षीभूत थे। यद्यपि ये पन्ने क्रम-बद्ध नहीं थे, पर फिर भी काफी महत्वपूर्ण थे। उन वर्षों में भी पंडितजी का डायरी-लेखन नहीं छूटा था। मैं आगे के पृष्ठों में डायरी के उन पृष्ठों को स्पष्ट करूँगा। पाठक देखें, कि भाषा में कितनी जीवन्तता तथा प्रवाह है। जहां पर भी जो भी स्पष्ट किया है, सूक्ष्मता से किया है। ये पन्ने अधिकतर तंत्र से सम्बन्धित थे, ढूंढने पर भी मंत्रों से सम्बन्धित पृष्ठ प्राप्य न हो सके, अस्तु।

मैंने जो भी डायरी-पृष्ठ मिले, उनका संपादन किया, पर यह उचित भी नहीं था कि पूज्य पंडितजी से छिपाकर कार्य किया जाय। संपादन करने के बाद मैंने वे डायरी के पन्ने पंडितजी के चरणों में रख दियें, और सारी बात सच-सच बता दी। पूज्या मां पास में बैठी थीं, इसलिए मैं निर्भीक था।

पंडितजी दो क्षण हम दोनों को देखते रहे, फिर जब उन्होंने देखा कि इस कार्य में मेरा और पूज्या मां का अलिखित समझौता-

सा है, तो वे खिलखिला पड़े, और डायरी के वे बचे हुए पृष्ठ भी जलती हुई अंगीठी में डाल दिये, बोले—यह सब लिख-लिखाकर मुझे क्यों और अधिक व्यस्त कर रहे हो? मेरी साधना के क्षणों में भी कुछ क्षण इस संसार को भेंट हो जाते हैं, मुझे तो प्रचार-प्रसार से दूर ही रखो रे……और कहते-कहते वे साधना-कक्ष में चले गये।

मैं अगले पृष्ठों में डायरी के कुछ पृष्ठ उद्धृत कर रहा हूँ, जिसमें तंत्र से संबंधित सामग्री है। कुछ में तांत्रिक विधियां भी हैं, तो कुछ में तंत्र-ज्ञान। मैं इन सबको यहाँ अविकल रूप में दे रहा हूँ, पर एक बार नहीं सौ बार चेतावनी दे रहा हूँ कि मात्र इन तंत्रों को पढ़कर कोई प्रयोग न करे। कई बार अधूरे ज्ञान से स्वयं की हानि हो जाती है, अतः किसी योग्य ज्ञाता से ही इसका ज्ञान प्राप्त करना चाहिए। स्वयं करने पर यदि कोई हानि या दुर्घटना हो गई तो इसके जिम्मेवार वे स्वयं होंगे। पंडितजी अत्यधिक व्यस्त रहते हैं, अतः वे भी इस ओर समय नहीं दे पाते। अतः पुस्तक पढ़कर पंडितजी को भी इस प्रकार के कार्य करने के लिए कहना भी उचित नहीं, हां इसमें कोई सन्देह नहीं, कि ये तंत्र प्रामाणिक हैं, प्रभाव-युक्त हैं, अपने-आप में पूर्ण एवं समर्थ हैं।

६ मार्च

स्थान………

वस्तुतः आज का दिन मेरे लिए कितना सौभाग्यशाली है, कि मैं अनायास ही स्वामी महेशानन्द जी के सम्पर्क में आ सका हूँ और गुरु के बारे में उन्होंने जो कुछ भी बताया वह अपने-आपमें कितना स्मरणीय है, जीवन में पूरी तरह से आत्मसात करने के लिए है। जिसके जीवन में गुरु नहीं, गुरु का साहचर्य नहीं, वह जीवन भी क्या? ज्ञानार्णव-तन्त्र की निम्न पंक्तियां अब मैं भली प्रकार से हृदयंगम कर सका हूँ कि गुरु-साहचर्य के

बिना किसी भी प्रकार की प्राप्ति संभव नहीं ।

गुरुः पिता गुरुर्माता गुरुर्देवो गुरुर्गतिः ।
शिवे रुष्टे गुरुस्त्राता गुरौ रुष्टे न कश्चन ।।

पूज्य महेशानन्दजी ने बताया, कि तन्त्र-साधना के मूल तीन तत्त्व हैं, गुरु, मंत्र और देवता; और इन तीनों का स्वरूप अलग-अलग नहीं है, अपितु ये तीनों ही गुरु में दुग्धनीरवत् समाहित हैं, क्योंकि गुरु उस मंत्र में उपस्थित रहता है, जिसे वह साधना से जीवन्त करता हुआ साधक को प्रदान करता है। मंत्र ही देव-शरीर और देवता का साकार रूप ही गुरु है, अतः मंत्र, देवता और गुरु का पृथक्-पृथक् रूप में देखना व्यर्थ है, अपितु ये तीनों ही मिलकर पूर्णता का आकार बनता है, और वह आकार ही गुरु है, ऋग्वेद में स्पष्ट कहा गया है—

अक्षेत्रवित् क्षेत्रविद् मह्य प्राट्
संप्रति क्षेत्र विदानु शिष्टः ।
एतद् वै भद्रमनुशासन स्योत
श्रुतिम् विन्दत्यन्न सीनाम् ।।

योगिनी तन्त्र में तो स्पष्ट उल्लेख है कि गुरु के मुख से निःसृत शब्द ही मंत्र हैं, गुरु के मुँह से उच्चारित शब्द उसके नहीं होते, अपितु वे शब्द जगत् प्रभु की वाणी होती है ।

मंत्रप्रदान काले हि मानुषे नगनन्दिनी ।
अधिष्ठानं भवेत् तत्र महाकालस्य शंकरी ।
अतोना गुरुतो देवी मानुषे नात्र संशयः ।।

प्रभु जाने, मुझे कब गुरु की प्राप्ति होगी ? कब उनके मुख से आशीर्वाद सुनने को मिलेंगे, कब मेरा जीवन सफल होगा ? इन दिनों क्यों मेरा जी तंत्र-साधना की ओर दिनोंदिन प्रवृत्त होता जा रहा है ? क्या मैं इस कार्य के लिए उपयुक्त हूँ ? क्या मुझे इस क्षेत्र की ओर त्वरता से बढ़ना चाहिए मैंने ? स्वामी महेशानन्द जी से जब यह प्रश्न किया, कि कौनसा व्यक्ति तंत्र-

साधना में सफल हो सकता है, तो मेरे प्रश्न के उत्तर में उन्होंने बताया, कि मनुष्यों को हम तीन श्रेणियों में विभाजित कर सकते हैं—

१. पहले स्तर के वे व्यक्ति होते हैं, जो प्रकृति से ही आलसी, सुस्त एवं जड़ होते हैं। वे अपने स्वयं के आवेगों से ही संचालित होते हैं, तथा पशुवत् खाना, सोना और मैथुन में ही पूरा जीवन व्यतीत कर देते हैं, ऐसे व्यक्तियों को 'तामसिक' संज्ञा दी जाती है।

ऐसे व्यक्ति अन्तर्मुखी न होकर मूलतः बहिर्मुखी होते हैं। किसी भी वस्तु या प्रकृति के आन्तरिक सत्य को जानने या समझने का प्रयत्न नहीं करते, अपितु उसके बाह्य रूप को देखकर ही सन्तुष्ट हो जाते हैं। ऐसे व्यक्ति साधना-क्षेत्र में सर्वथा अयोग्य होते हैं।

२. दूसरे स्तर के वे व्यक्ति कहे जाते हैं, जो प्रकृति से ही चंचल होते हैं। गुस्सा इनकी नाक पर चढ़ा रहता है, और जरा-सा भी कार्य इनकी रुचि के विपरीत होता है, तो ये बिगड़ जाते हैं, और ध्वंसात्मक बन जाते हैं। ऐसे व्यक्तियों को राजसी कहा जाता है, शूर, वीर आदि इसी श्रेणी के अन्तर्गत आते हैं। ऐसे व्यक्तियों को भी तंत्र-साधना में प्रवेश की अनुमति नहीं दी जा सकती।

३. तीसरे स्तर के व्यक्ति वे होते हैं, जिनका स्वभाव गंभीर, रुचि परिष्कृत और दृष्टि सूक्ष्म होती है। ऐसे व्यक्ति बात की तह तक तुरन्त पहुँच जाते हैं। बुद्धि के आलोक में ही ये विचरण करते हैं, और कभी भी जीवन में असन्तुलित नहीं होते। ऐसे व्यक्तियों को 'सात्विक' कहा जाता है। सांसारिक दृष्टि से ऐसे व्यक्तियों को 'आध्यात्मिक मानव' की संज्ञा दी जा सकती है। ऐसे ही व्यक्ति तांत्रिक-साधना में सफल होते देखे गए

आज की साँझ फिर उदासी में बीती, बच्चों के भोले-भाले चेहरे आँखों के सामने तैर गये, पर नहीं—मुझे इतने कोमल भाव मन में नहीं लाने हैं, साधना का पथ अत्यन्त दुष्कर ए कठिन है। मुझे अनवरत रूप से इस पर बढ़ना है, बढ़ना ही है, बढ़ूंगा ही।

९ मार्च

स्थान·········वह

पिछले दो-तीन दिन बड़े ऊहापोह में बीते। कुछ समझ नहीं आता, कि क्या हो गया है मुझको, जितना ही ज्यादा अपने-आप पर नियंत्रण करने की कोशिश करता हूँ, उतना ह ज्यादा टूटता जाता हूँ। कई बार तो ध्यान टूट जाता है, पूर तरह से समाधि भी नहीं लग पाती। मैंने जब अपनी व्यथ स्वामीजी से कही, तो वे मुस्करा दिये; दूसरे ही क्षण खिलखिल पड़े, पता नहीं क्यों हंसते रहे, कुछ समझ में नहीं आता।

आज फिर तंत्र-शास्त्र के व्यावहारिक पक्ष पर चर्चा छिड़ी तंत्र के बारे में बताते हुए उन्होंने कहा, कि यह 'आत्म साक्षा त्कार' का विज्ञान है। इसके माध्यम से ही हम अपनी आत्म को सही रूप से पहिचान सकते हैं, तथा बन्धनमुक्त होकर शु आनन्द की स्थिति तक पहुंच सकते हैं। हम जड़ तत्व से चलक आनन्दमय तत्व तक पहुँच कर अनिर्वचनीय आनन्द की प्राप्ति कर सकते हैं। इस पूरी यात्रा के मार्ग में जो पड़ाव हैं उन्हें च कहा जाता है। ये चक्र विभिन्न संख्या वाले दलों से संब कमलों के नाम से भी पहिचाने जाते हैं। प्रत्येक दल पर ए वर्ण की कल्पना है, जो कि उस केन्द्र में अभिव्यक्त होने वा देव-शक्ति का परिचायक या प्रतिनिधि है।

तंत्र-शास्त्र की दृष्टि से मानव-शरीर में निम्न चक्र नीचे ऊपर की ओर स्थित हैं :

१. **मूलाधार चक्र :** यह चार दलों वाला चक्र मेरुदण्ड के मूल में स्थित है, एवं स्थूल तत्व या पृथ्वी तत्व का अधिपति है। सूक्ष्मता से देखा जाय, तो यह अवचेतन स्पन्दनों को संचालित करता है।

२. **स्वाधिष्ठान चक्र :** यह छः दलों वाला चक्र जननेन्द्रिय-स्तर के अनुरूप है, एवं जलतत्व का अधिपति है। सूक्ष्मता या मनोवैज्ञानिक दृष्टि से देखने पर यह मानव की कामनाओं या छोटी-छोटी इच्छाओं का संचालन करता है।

३. **मणि-पुर चक्र :** यह चक्र दस दलों वाला है, तथा जननेन्द्रिय के ऊपर नाभिस्तर पर स्थित है। यह अग्नितत्व का प्रतिनिधित्व करता है, यह प्राणमय गतिविधियों का सूक्ष्मता से संचालन करता है।

४. **अनाहत चक्र :** यह बारह दलों वाला चक्र ठीक हृदय में स्थित है, और वायु-तत्व का प्रतिनिधित्व करता है। मूल रूप से यह भाव-प्रधान सत्ता का संचालक है।

५. **विशुद्ध चक्र :** यह सोलह दलों से युक्त चक्र कण्ठ में स्थित है, और आकाश-तत्व का प्रतिनिधि है। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से देखें तो यह मानव के बहिर्मुखी मन का नियामक एवं संचालक है।

६. **आज्ञा चक्र :** यह मानव-शरीर में भ्रू-मध्य में स्थित है, और मनस्-तत्व का नियामक है। संकल्प ज्ञान, अन्तर्बोध आदि का यह संचालक एवं प्रतिनिधि है।

७. **सहस्रार चक्र :** यह शिर के शीर्ष भाग में स्थित है, तथा सहस्र दलों से वेष्टित है। यह मानव-शरीर की चेतना का नियामक एवं उच्चतम केन्द्र है। यह हमारे चिन्तनशील मन का प्रतिनिधित्व करता है।

यद्यपि शरीर में इन चक्रों के अतिरिक्त भी चक्र हैं, पर मुख्यतः ये सात चक्र ही मानव के अन्तर्मन को उजागर करते

हैं। कुण्डलिनी-साधना से ही मानव इन चक्रों को स्पर्श कर अलौकिक आनन्द को प्राप्त कर सकता है।

वस्तुतः स्वामीजी एक दिव्य पुरुष हैं, उनके हल्के से स्पर्श से ही जो मुझे रोमांच एवं आह्लाद मिला है क्या वह लेखनी लिख सकती है ? यह मेरा सौभाग्य है कि इनके चरणों में बैठ-कर काफी कुछ सीखने और समझने को मिला है।

११ मार्च

स्थान—रुद्रपुर से चार मील
गंगा के किनारे

आज प्रातः से ही मैं अपने-आपको तरो-ताजा, स्वस्थ अनुभव कर रहा हूँ। यद्यपि कल स्वामीजी से बिछुड़ना पड़ा है, परन्तु इस बिछुड़ने में भी सन्तोष है, गति ही तो जीवन है। एक जगह बंधकर तो तालाब में भी सड़ांध उत्पन्न हो जाती है। बहता हुआ, आगे बढ़ता हुआ नदी का नीर हमेशा स्वच्छ और निर्मल बना रहता है।

सामने गंगा कलकल-ध्वनि से बह रही है। मैं इसके किनारे शिलाखण्ड पर बैठा सामने के धवल पर्वत-शिखरों को निहार रहा हूँ। कितना आनन्द मिल रहा है, मुझे कैसा अलौकिक आनन्द चारों ओर बिखरा पड़ा है, प्रकृति कितनी उन्मुक्त-हृदया है, वह शान्ति, सुख और सौन्दर्य लुटाने में कहाँ संकोच करती है। यह तो हम ही हतभाग्य पुरुष हैं जो ऊँची-ऊँची दीवारों के बीच कैद होकर रह गये हैं, और प्रकृति से दूर होकर परेशानियों में उलझ गये हैं।

इस सरिता की कल-कल ध्वनि में भी एक लय है, एक संगीत है, एक नाद है, क्या यह मंत्र है, मंत्र ही तो है यह। सर्वप्रथम ब्रह्म जब वाणी में अभिव्यक्त हुआ तो वह मंत्र ही तो था, और इसी मंत्र या नाद-शक्ति के बाद में सृष्टि की उत्पत्ति

हुई। यही शब्द वेदों में उच्चरित हुआ, भाष्यों में स्पष्ट हुआ।

मंत्र एक अक्षर या एक से अधिक अक्षरों का समूह-मात्र ही तो है। प्रत्येक देवता का एक निश्चित वर्ण है, प्रत्येक वर्ण की एक निश्चित ध्वनि है, और यह निश्चित ध्वनि ही तो उस देवता की प्रतीक है; अतः एक ही ध्वनि या शब्द या मंत्र को बार-बार उच्चरित करना एवं उस पर एकाग्र होना ही उस देवता के समीप जाना है, अधिकाधिक सम्पर्कित होना है। ऋषियों ने इस सत्य को जाना, और उन्होंने अपनी आत्मा का रस प्रदान कर उसे पुष्ट किया। यही मंत्र गुरुमुख से शिष्य के अन्तस्तल में उतरता है, और उसे जीवन्तता प्रदान करता है। मंत्र तो गुरु में, उसके हृदयस्तल में सन्निहित है ही, उसके मुँह से निकलने पर वह स्फूर्तिवान होकर सिद्धियों के रूप में प्रकट हो जाता है। ये अद्भुत आश्चर्यजनक सिद्धियाँ ही गुरु के द्वारा निर्देशित लक्ष्य तक शिष्य को पहुँचाने में सक्षम होती हैं। श्रीमद्भागवत् में इन सिद्धियों के बारे में स्पष्ट कहा गया है—

अणिमा महिमा मूर्ते लघिमा प्राप्तिरिन्द्रियैः।
प्राकाम्यं श्रुत द्रष्टेषु शक्ति प्रेरणमीशिता॥
गुणें स्व संगो वशिता यत्कामस्तदवस्यति।
एता मे सिद्धयः सौम्य अष्टावौत्पत्तिका मताः॥
अनूर्मिमत्वं देहे ऽस्मिन् दूर श्रवण दर्शनम्।
मनोजवः कामरूपं परकाय प्रवेशनम्॥
स्वच्छन्द मृत्युर्देवानां सह क्रीडानु दर्शनम्।
यथा संकल्प संसिद्धि राज्ञा प्रतिहता गतिः॥

वस्तुतः ध्वनि अपने-आपमें सिद्धिप्रद है, वह आत्म-चेतना का प्रतिबिम्ब है, और जब वह ध्वनि-समूह एक लय में बंध जाता है, तो प्रभावी बनकर फलप्रद हो जाता है। यह कार्य जप के माध्यम से ही संभव है।

आज जब मैं चिन्तन करता हूं, तो मानता हूं, कि मुझे जो

कापाली कल मिला था; उससे घनिष्ठता बढ़ानी चाहिये। मंत्र और तंत्र तो दोनों एक ही शक्ति के दो भेद हैं। इन दोनों में परस्पर मेल ही है, भेद कहाँ? मैं मंत्र के प्रति ही क्यों इतना आकृष्ट हूँ, तंत्र में क्या विपरीतता है। यदि कापाली मुझे कुछ तंत्र सिखाना ही चाहता है, तो सीखने में हर्ज क्या है। आज मैं पुनः उससे भेंट करूँगा, देखता हूँ इस रास्ते में क्या-क्या है पर —पर तंत्र-साधना क्लिष्ट है, इसमें खानपान में कितनी निम्नता है, श्मशान-साधना, भस्म-साधना क्या मुझ ब्राह्मण-पुत्र के लिये अनुकूल है, क्या मुझे यह सब कुछ करना चाहिए—अजीब अन्त-र्द्वन्द्व है, कुछ समझ में नहीं आ रहा है कि क्या करूँ? कापाली का आग्रह है कि मैं तंत्र-साधना भी करूँ, कुछ सीखूँ, पर क्या मेरे इस कार्य से जनहित संभव है, इससे किसी का अनिष्ट तो नहीं होगा?—मुझे अभी कापाली से मिल लेना चाहिए, मिलूँगा ही और जो-जो भी यह सिखायेगा मैं सीखूंगा—। नियन्ता मुझे किधर ठेल रहा है—मुझे किधर बढ़ना है—प्रभु इच्छा बलीयसी।

१२ मार्च सायं
स्थान—अज्ञात

यह कापाली भी अद्भुत है, इसकी क्रियाएं अद्भुत हैं, वेष-भूषा अद्भुत है, खानपान, रहन-सहन सब कुछ विचित्र, अद्भुत एवं आश्चर्यजनक है, पर इसमें कोई सन्देह नहीं, कि तंत्र-साधना में यह निष्णात है। बताता है, तो बताता ही चला जाता है, रुकने का नाम ही नहीं लेता।

आज जब दोपहर को इसकी कुटिया पर गया तो देखा कि यह जिस थाली में भोजन कर रहा है, उसी थाली में चार-पाँच कुत्ते भी इसके साथ ही भोजन कर रहे हैं, न कोई घृणा है, न कोई हर्ष। मुझे देखते ही चहक उठा, 'आओ! आओ नारायण,

भोजन करो। मेरे साथ ही भोजन करने बैठ जाओ न। मैंने मना कर दिया, मन में घृणा-सी हो आई। यद्यपि तांत्रिक नियमों के अनुसार इस प्रकार के कार्यों में घृणा के भाव उदय होने नहीं चाहिए, पर क्या करूँ? बाल्यावस्था के जो संस्कार हैं, वे इतने जल्दी थोड़े ही छूट सकते हैं।

भोजन करने के बाद वह मेरे ही पास आकर बैठ गया। जमीन पर ही, पालथी मार कर, बोला—हूँ। तो क्यों आये हो? बताओ, बताओ न।'

मैं चकित रह गया, खुद इसने ही तो प्रातः कहा था, कि दोपहर को आना, कुछ सिखाऊंगा; और अब ऐसा व्यवहार कर रहा है, जैसे मुझसे मिला ही न हो—मैं चुप रहा।

वह लेट गया, आँखें आकाश की ओर टिका दीं, बोला—सुन रे नारायण! तू घुसना तो चाहता है इस क्षेत्र में, पर यह रास्ता कोई आसान नहीं है। कई बार तो प्राणों पर आ बनती है, पर तुझे मैं जरूर सिखाऊंगा, क्योंकि तेरी आँखों में चमक है, दृढ़ निश्चय की छाप दिखाई दे रही है, क्यों सीखेगा न?

मैंने हाँ में गर्दन झुकाई, तो बोला—सुन।

और वह बोलता गया, मैं सुनता रहा। न मालूम कितनी देर तक वह बोलता रहा, ज्ञात नहीं, पर उसने जो कुछ भी बताया, उसका सार निम्न प्रकार से है—

१. शत्रुपक्ष का उच्चाटन करने के लिए नैऋत्य कोण में कुण्ड बनता है, शत्रु-मारण कर्म में कुण्ड के दायें भाग में अर्द्ध-चन्द्र का निर्माण करना चाहिए।
२. शत्रु-पीड़ा बढ़ाने हेतु मण्डप या कुण्ड के नैऋत्यकोण में त्रिकोण कुण्ड अवश्य बनाना चाहिए।
३. वशीकरण के लिए चौकोर कुण्ड का निर्माण होता है। स्तंभन तथा उच्चाटन के लिए त्रिकोण कुण्ड बनाना चाहिए। मारण के लिए षट्कोणीय कुण्ड बनता है।

४. उच्चाटन में अग्निकोण की ओर, मारण में दक्षिण की ओर, मुंह करके जप या हवन करना चाहिए। इसी प्रकार वशीकरण-कार्य में वायव्य एवं स्तंमन-कार्य में पूर्व की ओर मुंह करके कार्य, हवन या जप करना चाहिए।
५. यज्ञाहुति में वशीकरण-कार्य में चमेली के पुष्प, उच्चाटन में कपास के बीज, मारण में धतूरे के बीज, स्त्री-प्राप्ति के लिए कमल तथा धन-प्राप्ति के लिए मात्र घृत की आहुतियां देनी चाहिए।

माला :

१. रुद्राक्ष, शंख, कमल गट्टा, स्फटिक, मोती, स्वर्ण आदि में से किसी एक माला का प्रयोग किया जा सकता है।
२. शत्रुनाश के लिए कमल गट्टे की माला, सम्पत्ति-प्राप्ति के लिए जीव-पुत्रिका की माला, तथा समस्त प्रकार की सिद्धियों की प्राप्ति के लिए रुद्राक्ष की माला का प्रयोग करना चाहिए।
३. माला की सभी मणियाँ समान हों, तथा एक ही पदार्थ की हों, उसमें विजातीय पदार्थ न हो।
४. अर्थसिद्धि के लिए सत्ताईस मणियों की माला, मारक-कार्य के लिए पन्द्रह मणियों की माला, तथा समस्त प्रकार की कार्यसिद्धि के लिए एक सौ आठ मणियों की माला का प्रयोग होना चाहिए।
५. सभी मालाओं में अनुलोम-विलोम का प्रयोग करना चाहिए।
६. स्तंभन तथा वशीकरण में अँगूठे के अग्रभाग से माला जपनी चाहिए। आकर्षण, वशीकरण-कार्य में अंगूठे व अनामिका के सहयोग से माला जपनी चाहिए। विद्वेषण में अँगूठे व तर्जनी तथा मारक-कार्यों में अंगूठे व कनिष्ठिका उंगली से

माला जपनी चाहिए।

आसन :

१. शुभ कार्यों में 'पद्मासन' से बैठना चाहिए; स्तंभन-कार्यों में विकटासन; आकर्षण, सम्मोहन आदि कार्यों में कुक्कुटासन; शान्ति-कार्यों में स्वस्तिकासन; मारक कार्यों में पार्ष्णिकासन तथा वशीकरण-कार्यों में भद्रासन से बैठना चाहिए।
२. आर्कषण-वशीकरण के लिए व्याघ्र-चर्म, उच्चाटन के लिए ऊष्ट्र-चर्म, विद्वेषण के लिए अश्व-चर्म तथा मारण-कार्यों के लिये महिष-चर्म के आसन का प्रयोग करने से विशेष सिद्धि प्राप्त होती है।

विशेष

१. शांति कार्यों में नमः शब्द, स्तंभन में वषट्, वशीकरण में स्वाहा, विद्वेषण में वौषट्, उच्चाटन में 'हुं' तथा मारण-कार्यों में 'फट्' शब्द का प्रयोग करना चाहिए। ये शब्द मंत्र के अन्त में लगाने चाहिए।
२. मंत्रों की भी अलग-अलग जातियाँ हैं। एक वर्ण वाले मंत्र को 'कर्तरी', दो अक्षर वाले मंत्र को 'सूची', तीन अक्षरों वाले को 'मुद्गर', चार को 'मुसल', पंचाक्षरीय मंत्र को 'क्रूर', षडक्षर को 'श्रृंखला', सप्ताक्षरीय मंत्र को 'क्रकच', अष्टाक्षर को 'शूल', नवाक्षर को 'वज्र', दशाक्षर को 'शक्ति', एकादशाक्षर को 'परशु', द्वादशाक्षर को 'चक्र', त्रयोदशाक्षर को 'कुलिश', चतुर्दशाक्षर को 'नाराच', पंचदशाक्षर को 'भुशुंडी' एवं षोडषाक्षरीय मंत्र को 'पद्म' के नाम से संबोधित किया जाता है।
३. अलग-अलग कार्यों के लिए अलग-अलग जाति के मंत्रजप का विधान है। मंत्र-छेदन में 'कर्तरी', भेद-कार्यों में 'सूची', मंजन

कार्यों में 'मुद्गर', क्षोभ में 'मुसल', बन्धनादि में 'शृंखला', छेदन-कार्यों में 'क्रकच,' घात-कर्म में 'शूल', स्तम्भन आदि सिद्धि में 'वज्र', बन्धन में 'शक्ति', विद्वेषण में 'परशु', सभी प्रकार के कार्यों में 'चक्र', उत्सादन में 'कुलिश', सैन्य-भेद में 'नाराच', मारण-कार्यों में 'भुशुंडी', शक्ति-कार्यों में 'पद्म', मंत्र का प्रयोग करना चाहिए।

४. मंत्र-भेद

१. जिस मंत्र के प्रारम्भ में नाम लिया जाता है, उसे 'पल्लव' मंत्र कहते हैं।
२. जिस मंत्र के अन्त में नाम लेने का विधान हो उसे 'योजन' मंत्र कहा जाता है।
३. नाम के प्रारम्भ, मध्य या अन्त में मंत्र होने से उसे 'रोध' मंत्र कहा जाता है।
४. नाम के प्रत्येक अक्षर के पीछे जो मंत्र होता है, उसे 'पर' नाम की संज्ञा दी जाती है।
५. नाम के प्रारम्भ में मंत्र तथा अन्त में वही विलोम मंत्र देने से उसे 'सम्पुट' मंत्र कहा जाता है।
६. दो अक्षर मंत्र के फिर दो अक्षर नाम के इस प्रकार क्रम करने से उस मंत्र को 'विदर्भ मंत्र' की संज्ञा दी जाती है।
७. मंत्र के बीच में नाम ग्रथित होने पर उस मंत्र को "वेषण" मंत्र कहा जाता है।
८. नाम के बीच में मंत्र ग्रथित होने पर उसे 'वैयक्' मंत्र कहा जाता है।
९. मारण, उच्चाटन, विद्वेषण आदि कार्यों में 'पल्लव' मंत्र का प्रयोग करना चाहिए।
१० वशीकरण, शांति, मोहन आदि कार्यों में 'योजन' मंत्र का प्रयोग किया जाता है।

११. ज्वर, पीड़ा-निवारक कार्यों में 'रोध' मंत्र का उपयोग करना चाहिए।
१२. शांति-कार्यों में 'पर' नामक मंत्र का प्रयोग करना चाहिए।
१३. कीलन, त्राटक, रक्षादि कार्यों में 'सम्पुट' मंत्र का उपयोग होता है।
१४. पुष्टि-कार्यों में 'विदर्भ' मंत्र का उपयोग होता है।
१५. वशीकरण, मोहन आदि में 'वैयक' मंत्र का प्रयोग करना उचित है।

५. कार्य-विशेष में मंत्रों के अन्त में जिस ध्वनि का प्रयोग किया जाता है उसे 'ध्वन' कहा जाता है। अलग-अलग कार्यों के लिए अलग-अलग 'ध्वन्' का प्रयोग होता है, जो कि निम्न-लिखित हैं :—

१. बन्धन, उच्चाटन, मारण में 'हुं'
२. विद्वेषण-कार्यों में 'फट्'
३. भूत-प्रेतादि शांति में 'हुं फट्'
४. शुभ कार्यों में 'वषट्'
५. यज्ञादि में 'स्वाहा'
६. पूजन-कार्यों में 'नमः'
७. पुष्टि, पुत्रादि कार्यों में 'स्वाहा'
८. प्रबल वशीकरण में 'स्वधा'
९. परस्पर-विद्वेष कार्यों में 'वषट्'
१०. आकर्षण में 'हुं'
११. उच्चाटन-त्राटक में 'स्वस'
१२. अन्धकरण आदि में 'वशट्' शब्द का प्रयोग करने से ही पूरी-पूरी सफलता मिलती है।

६. मंत्रजप करने वाले के मंत्रजप करते समय यदि दाहिनी नासिका से श्वास चलता है तो आग्नेय मंत्र जाग्रत होते हैं।

२. यदि बाईं नासिका से श्वास चलता है, तो 'सौम्य मंत्र जाग्रत होते हैं।
३. यदि दोनों नासिका-रन्ध्रों से श्वास चलता हो उस समय सभी मंत्र जाग्रत होते हैं।
४. जिस समय जो मंत्र जाग्रत हो, उसी का जप करने से सफलता मिलती है।
५. जिस मंत्र के अन्त में 'स्वाहा' शब्द का प्रयोग होता है वे 'स्त्री संज्ञक' मंत्र कहलाते हैं।
६. जिन मंत्रों के अन्त में 'हुं' या 'फट्' शब्द का प्रयोग होता है उन्हें 'पुरुष-संज्ञक' मंत्र कहते हैं।
७. जिन मन्त्रों के अन्त में 'स्वाहा' शब्द का प्रयोग होता है उन्हें 'नपुंसक संज्ञीय' मंत्र कहा जाता है।
८. जिन मंत्रों के अन्त में ओ३म् शब्द का प्रयोग हो, उन्हें 'आग्नेय मंत्र' कहा जाता है।
९. जिन मंत्रों में कुछ भी 'ध्वनि' न हो, वे 'सौम्य' मंत्र कहलाते हैं।
१०. पुरुष-संज्ञक मंत्रों का प्रयोग वशीकरण, अभिचार आदि कार्यों में किया जाता है।
११. स्त्री-संज्ञक मंत्र नाश, शत्रु हन्तादि कार्यों में किया जाता है।
१२. अन्य सभी कार्यों में नपुंशक-संज्ञक मंत्रों का प्रयोग होता है।

कपाली बोलते-बोलते हंस पड़ा, हंसते-हंसते खिलखिला पड़ा। बोला, काफी कुछ बक गया हूं न, थक गये होगे तुम। आज बस इतना ही, शाम को अर्थात् रात्रि को गंगा तट पर घूमने चलेंगे, तब तुम्हें मंत्र-उत्कीलन विधि समझाऊंगा, क्यों चलोगे न?

मैंने हामी भरी और उठ खड़ा हुआ। उसने चुटकी-भर राख

मेरे हाथ पर मली और खिलखिला पड़ा। पता नहीं, क्यों इतना हंसता रहता है, पर कितना ज्ञान है, तंत्रों का इसे, रात्रि को अवश्य ही इससे मिलूंगा।

दिनांक वही
स्थान—गंगातट
समय—रात्रि के लगभग १ बजे

लगभग आधी रात बीत गई है, आकाश स्वच्छ है, तारे टिम-टिमा रहे हैं, साथ-ही-साथ कपाली की तरह चाँद भी खिल-खिलाता, मुस्कराता नजर आता है। निर्जन गंगातट—शान्त—पवित्र—स्निग्ध—सुरम्य—कितना सुन्दर लग रहा है, पर कितना एकान्त—केवल इस खामोशी को मात्र गंगा की कलकल ध्वनि ही भंग कर रही है। अभी तक कपाली भी नहीं आया, भगवान जाने कहाँ रह गया? कह रहा था, श्मशान जगाकर आऊँगा—श्मशान कैसे जगाया जाता है, एक दिन मुझे भी देखना है, पर क्या मेरे लिए उचित भी है। घर से तो मैं मंत्र-साधना के लिए निकला था, और उलझता जा रहा हूँ, पर तंत्र-साधना में, मारण, वशीकरण शत्रुस्तंभन-तंत्रों में—पर विद्या कोई भी हो, खराब थोड़े ही होती है, उसका प्रयोग और उपयोग खराब हो सकता है—शायद कपाली आ गया है, पदचाप सुनाई पड़ रही है—।

अद्‌भुत तांत्रिक है यह कपाली भी, न मालूम कितना-कितना मंत्र है, इसके पास अटूट-खजाना भी कहा जाय तो कोई अत्युक्ति नहीं। ढेर सारी बातें करता रहा, प्रयोग करता रहा, समझाता रहा। मुख-स्तंभन समझाया, शत्रु-उत्कीलन तंत्र बताता रहा, मूठ फेंककर शत्रु को कैसे घायल किया जाता है, बताया, और बताता रहा, प्रयोग करता रहा, बोला—नारायण! तुम्हें एक दिन 'श्मशान जाग्रत विद्या' सिखलाऊँगा, जो कि तांत्रिक क्षेत्र में सर्वोपरि कही जाती है···फिर एकदम से याद करता हुआ

बोला—अरे हाँ। तुम्हें तो आज मैंने मंत्र-उत्कीलन सिखाने के लिए बुलाया था, मैं तो बातों ही बातों में भूल बैठा—।

जब तक किसी भी मंत्र का उत्कीलन न किया जाय, वह मंत्र सिद्ध नहीं होता, चाहे उसे कितना ही जपा क्यों न जाय, मंत्र उत्कीलन की मुख्यतः दो विधियाँ हैं, जो कि निम्नलिखित है—

१. मंत्र-उत्कीलन की पहली विधि तो यह है, कि जिस मंत्र को सिद्ध करना हो उस मंत्र को भोजपत्रों पर एक सौ आठ बार अष्ट-गंध से लिखकर षोडश पूजा करे, और फिर उन भोजपत्रों को नदी के प्रवाह में विसर्जित कर दे।

२. मंत्र-उत्कीलन की दूसरी विधि यह है, कि मृत्तिका से इष्ट-मूर्ति बना कर उसमें प्राण-प्रतिष्ठा करे, तथा फिर शुभ मुहूर्त में भोजपत्र पर मंत्र को लिखकर इष्ट के सीने पर रख दे, या चरणों में रख दे एवं तीस दिनों तक उस मंत्र एवं इष्ट की षोडश पूजा करे। इसके बाद गुरु आज्ञा से वह भोजपत्र एवं इष्ट-मूर्तिका मूर्ति नदी के प्रवाह में विसर्जित कर दे। इसके पश्चात् नियमानुसार मंत्रजप करे, तो निस्संदेह मंत्र सिद्ध हो जाता है।

मंत्र-उत्कीलन के बाद नित्य नियम से एवं निश्चित मंजपत्र करे, कभी कम और कभी ज्यादा मंत्रजप भी करना उचित नहीं है। इस प्रकार समय सम्यक् स्थिर होना चाहिए, कभी प्रातः, कभी सायं और कभी रात्रि को जप करना अनुकूल नहीं।

मंत्रजप के लिए ब्रह्म मुहूर्त या रात्रि काल ज्यादा उचित कहा गया है—तंत्र-क्षेत्र में मुख्यतः षट् कर्म या छः प्रकार के कर्म कहे जाते हैं, जो कि निम्न हैं :—

१.वशीकरण, २. शान्ति, ३. स्तंभन, ४. विद्वेषण, ५. उच्चाटन, ६. मारण। उपरोक्त छः प्रकार की कार्यसिद्धि में निम्न देवियाँ सहायक होती हैं—

१. रति, २. वाणी, ३. रमा, ४. ज्येष्ठा, ५. मातंगी, ६. कुल-

यामिनी, ७. दुर्गा, ८. क्षमा, ९. शिवा तथा १०. काली।

साधक को चाहिए कि इन दशों देवियों के महत्त्व को समझे, और यह भी ध्यान रखे, कि किस कार्यसिद्धि के लिए किस देवी की अर्चना और पूजा उपयुक्त है।

यथासंभव जंगल, श्मशान या मन्दिर के एकान्त कोने में साधक को जप करना चाहिए। इस बात का पूरा-पूरा ध्यान रखें, कि मारण-कर्म घर में न कर श्मशान में ही करे।

इस प्रकार के कार्यों में साधक जप करते समय कोई भी वस्त्र न पहने, यथासंभव जप करते समय नग्नावस्था में रहे; यदि यह उचित न हो तो हरिण या व्याघ्र का चर्म लपेट ले, यदि यह भी संभव न हो तो मात्र लाल वस्त्र को धारण करे। इसके अलावा अन्य किसी रंग का वस्त्र धारण न करे।

मिट्टी का आसन, भस्मासन या कुशासन का प्रयोग करे, इसके अलावा अन्य आसन वर्जित है।

जपकाल में सुवर्ण या रजत की माला का प्रयोग करे, पर मारण-कार्यों में अस्थि-माला विशेष सिद्धिप्रद कही गई है।

जप करते समय साधक को चाहिए, कि वह निडर रहे, किंचित् भय भी अपने पास तक फटकने न दे। इतना होने पर भी यदि भय-दृश्य उपस्थित हो जाय, तो भैरव-तंत्र या हनुमत्तंत्र का प्रयोग कर दे, जिससे वह निर्भय रह सके।

जप करते समय या किसी भी प्रकार का प्रयोग करते समय अपना 'रक्षा विधान' सबसे पहले कर लेना चाहिए। इसे आवश्यक ही नहीं, अत्यावश्यक समझे।

जपकाल में केश खुले हों, चोटी के भी गांठ लगी हुई न हो।

शान्ति-कार्यों में माध्वी शक्ति शीघ्र फलप्रद कही गई है। इसी प्रकार वशीकरण में 'स्फटिकी' शक्ति का आवाहन, स्तंभन में 'डाकिनी' शक्ति का प्रयोग, विद्वेषण में 'पौष्टिकी' शक्ति की पूजा, उच्चाटन में 'गौड़ी' तथा मारक-कार्यों में 'भैरवी' शक्ति का

प्रयोग करना चाहिए।

किसी भी प्रकार की साधना करने से पूर्व गुरु को अपने विश्वास में ले लेना चाहिए। बिना गुरु की साक्षी या अनुमति के किसी भी कार्य में प्रवृत्त नहीं होना चाहिए।

कपाली से बातें करते-करते कब भोर हो गई कुछ पता ही न चला, शायद यहाँ पर मेरा यह अंतिम पड़ाव है। कल से कपाली श्मशान में विशेष साधन में प्रवृत्त होगा, और लगभग महीने-भर तक दिगम्बरावस्था में श्मशान में ही रहेगा। मुझे बहुत कहा, कि मैं भी सीखूँ, पर यह मेरा लक्ष्य नहीं है। अभी मैं श्मशान-साधना में प्रवृत्त होना उचित नहीं समझता; यदि फिर कभी कपाली से मिलना हुआ, और उचित समझूँगा, तो अवश्य ही इस क्षेत्र में प्रवृत्त होऊँगा।

लगभग सूर्य पूर्व दिशा से झाँकने लगा है। कपाली बातें करता-करता भावुक हो उठा है, मुझसे कुछ स्नेह-सा हो गया है, आँखों में नमी-सी आ गई है। क्या पत्थर में भी पानी का झरना प्रवाहित हो सकता है? कितना सहृदय है, कपाली, ऐसा लग रहा है, जैसे मेरे पूर्व जन्म का भाई हो। उठते समय 'वार्तालो' यंत्र दिया, कितना अमोघ और अद्भुत यंत्र है यह, कितनी महत्त्वपूर्ण भेंट है मुझे कपाली द्वारा। भीगे मन से मैं भी उठ खड़ा हुआ—पर कपाली—उसकी तो आँखें झरने लग गईं—उफ्—और झरती आँखों से ही वह श्मशान की ओर पगडंडी से बढ़ गया—उफ कपाली—! कितना स्नेह दे दिया है तूने।

६ मई
स्थान—भैरव मन्दिर,
सिरिकाऊ

काफी दिन हो गये कपाली से बिछुड़े हुए, पर एक क्षण के लिए भी उसे भूल नहीं पाया हूँ। विदा होते समय की वे डब-

डबाई आँखें, उफनता हुआ सीना, और भीगे हुए बोल—क्या ये आसानी से भुलाई जा सकती हैं—कभी नहीं। कई बार विचार आया कि शायद कपाली ने मुझ पर ही तो कहीं वशीकरण नहीं कर दिया। पर प्रज्ञा-साधना से जब ज्ञात किया, तो मेरी कल्पना निराधार निकली। यह स्मरण वशीकरण की वजह से नहीं है, हृदय का स्नेह है, जो बरबस बार-बार उसका स्मरण दिला देता है।

यह भैरव-मन्दिर अद्भुत सिद्धिप्रद स्थान है। सिरिकाऊ से लगभग चार-पाँच मील दूर होगा, अरण्य में, एकान्त, शान्त पहाड़ी पर स्थित—काफी बड़ा मन्दिर है, और मंदिर में जो भैरव की मूर्ति है वह विशाल, विकराल और भयावनी है। पहली बार तो देखते ही काँप गया था, उफ्।

यहीं पर सबसे पहले त्रिजटा अघोरी से भेंट हुई थी—काला आबनूसी-सा भयंकर डीलडौल, विशाल ललाट, उन्नत एवं उभरा हुआ वक्षःस्थल; पूरा शरीर नंगा, मात्र नीचे व्याघ्र-चर्म लपेटा हुआ, पूरे शरीर पर बड़े-बड़े बाल, ललाट पर सिन्दूर का बड़ा-सा तिल, मदिरा-पान के कारण लाल-लाल बड़ी भयावनी आँखें—साक्षात यमराज-सा। मुझे देखते ही वह आश्चर्य से चौंक उठा, सोचा होगा, यह पिद्दी-सा छोकरा यहाँ कैसे आ गया? यहाँ तक आने की हिम्मत कैसे हो गई, उसके कंठ से जोर से आवाज गूँजी—'हूँ', जैसे कई बाँस एक साथ खड़खड़ा उठे हों।

मैं डर गया। वस्तुतः उसे देखकर मेरे मन में एक दहशत-सी छा गई। इससे पहले मैंने ऐसे भयंकर पुरुष को देखा क्या, कल्पना तक नहीं की थी, पर यह घबराहट या डर कुछ क्षणों तक ही मन में टिका, दूसरे ही क्षण मैंने निर्भय होकर भैरव-मंदिर की ओर कदम बढ़ा दिये। वह चुपचाप मुझे घूरता रहा, मैंने अपने मन से त्रिजटा को निकाल दिया। ध्यान एकटक भैरव-

मूर्ति की ओर था, और होंठ भैरव-स्तुति उच्चारित कर रहे थे। करीब बीस मिनट तक मैं तन्मयता से गाता रहा, वह चुपचाप सुनता रहा। जब भैरव-स्तुति समाप्त हुई तो मैं पीछे हटा, सिर घुमाया, तो देखा त्रिजटा अघोरो गुस्से से थरथर कांप रहा है, क्रोध के वेग के कारण सारा शरीर हिल रहा है, आँखें कपाल तक चढ़ आई हैं, और मेरे देखते-ही-देखते आकाश से झटक कर मदिरा की एक बड़ी-सी बोतल गट-गट कर हलक के नीचे उतार ली।

ज्योंही भैरव-स्तुति समाप्त हुई, वह उफन पड़ा—दुष्ट—म्लेच्छ—नारकीय कीड़े—तेरी हिम्मत कैसे हो गई, इस पहाड़ी पर आने की, भैरव के सामने बैठने की, स्तुति करने की—तूने समझ क्या रखा है, अपने-आपको—वह बकता जा रहा था। उसके मुँह से गालियों का अजस्र प्रवाह बह रहा था, होंठ के दोनों किनारों पर आकर थूक जमा हो रहा था, और बोलते समय थूक मुँह के बाहर उछल रहा था।

मैं यथासंभव शान्त रहा। मुझे अपने-आप पर भरोसा था। कपाली ने काफी कुछ सिखा दिया था, और इसके बाद भी मार्ग में एक अघोरी के साथ दस-बारह दिन रह कर काफी कुछ सीख चुका था; पर जब मैंने देखा कि त्रिजटा 'स्तंभन प्रयोग' कर रहा है, जिसके माध्यम से वह मुझे अपाहिज-सा बनाने पर तुला है तो मैंने भी इसके प्रतिकार में 'शत्रु-मुख स्तंभन' प्रयोग किया, और उसके स्तंभन प्रयोग को निष्फल कर दिया।

मेरे द्वारा 'शत्रुमुखस्तंभन' प्रयोग देख वह आश्चर्यचकित रह गया। उसके मानस ने यह जान लिया कि सामने खड़ा पिद्दी मात्र पिद्दी नहीं है, इसके अलावा भी वह कुछ है और मुझ-जैसे तांत्रिक से भी डटकर लोहा ले सकता है। वह खुशी से झूम उठा। उसका क्रोधावेग कम हुआ, चेहरे पर बाल्यसुलभ चंचलता थिरक आई, आँखों में मस्ती और खुमारी-सी दिखाई देने लगी

और प्रसन्नतातिरेक में उसने मुझे खिलौने की तरह दोनों हाथों में उठा लिया, दो-तीन चक्कर काटे और पृथ्वी पर खड़ा कर दिया।

मैं अब भी शान्त था, न मालूम यह त्रिजटा की कोई नयी चाल हो, पर नहीं, उसकी दोनों बांहें मित्रता की भावना लिये फैली हुई थीं, उसमें कहीं कोई छल-छद्म या स्वार्थ नहीं था। मैं भी बाहें फैलाकर उसके सीने से चिपक गया, जैसे किसी पहाड़ से कोई कंकर टकराया हो।

त्रिजटा ने मुझे अपने निवास-स्थान के पास ही ठहरने का निमंत्रण दिया है, बिल्कुल अकेला है, त्रिजटा। अभी तक शादी क्या स्त्री का सम्पर्क-साहचर्य भी नहीं देखा है। इस पहाड़ी का वह एकछत्र सम्राट् है। गाँव के निवासी डर कर इधर का रुख ही नहीं करते। साल में मात्र दो बार मेला लगता है इस पहाड़ी पर—तभी एक-दो दिनों तक चहल-पहल दिखाई देती है, अन्यथा यह पहाड़ी सुनसान बनी रहती है।

त्रिजटा सप्ताह में एक या दो बार गाँव में जाता है, और काफी कुछ मांस खरीद कर ले आता है। यों उसे कोई मना नहीं करता—वह जिस घर से भी चाहे, बकरा उठा ले आता है भैरव की बलि देने के लिए; गाँव में जो शराब खींचता है वह आधी शराब भैरव-मंदिर में चढ़ा देता है।

बहुत दिलचस्प है त्रिजटा अघोरी। ऊपर से ही यह कठोर दिखाई देता है, अन्दर से तो यह कुसुम से भी कोमल है, कोई इसके दिल में झाँक कर तो देखे—।

मैंने त्रिजटा के पास वाली कोठरी में डेरा-डंडा जमा लिया है। मेरे पास है ही क्या—दो धोती, दो कुरते, एक लोटा और एक थैली—इतनी ही तो पूंजी है मेरी।

ईश्वर मुझे किधर ठेल रहा है, कुछ पता नहीं, ईश्वरेच्छा बलीयसी।

त्रिजटा ने वशीकरण के कई प्रयोग बताये, जिसमें से इक्कीस प्रयोग सर्वोपरि हैं। इन प्रयोगों के माध्यम से व्यक्ति चाहे, तो पाषाण को भी वश में कर सकता है। यदि सफल प्रयोग करे तो शेर को भी कान पकड़ कर नचा सकता है। त्रिजटा ने जो प्रयोग बताये उसे सिद्ध भी कराये, अपने सामने प्रयोग भी कराये, और फिर गांव में चल कर प्रत्यक्ष कराकर भी बताये।

सर्वजन वशीकरण प्रयोग :

यह प्रयोग प्रारंभिक है, और आसान भी है, पर यह बात भी निश्चित है, कि यह प्रयोग अपने-आपमें अचूक एवं सिद्धिप्रद है। इसके माध्यम से व्यक्ति सामूहिक वशीकरण कर सकता है। एक प्रकार से देखा जाय तो इस प्रयोग से व्यक्तिगत वशीकरण उतना अनुकूल नहीं है, जितना सामूहिक। पूरी भीड़ का या घर के समस्त सदस्यों का वशीकरण करना इसके माध्यम से संभव है।

प्रयोग :

साधक को चाहिए कि वह किसी भी शनिवार को संध्या-काल में तालाब या नदी के किनारे जाये और अक्षत, पुष्प, जल तथा हरिद्रा से उसका निम्न मंत्र से पूजन करे—

'ओ३म् नमो जलौकायै सर्व जनं वशं कुरु कुरु हुम्।'

इसके बाद साधक घर आ जावे तथा रात्रि को पृथ्वी पर शयन करे। दूसरे दिन रविवार को प्रातः उस तालाब के जल में मुट्ठी-भर सरसों भिगोकर छाया में सुखा दे, जब वे सरसों सूख जायं, तो उसका चूर्ण कर तेल में मिला दे, तथा काले कपास की बत्ती उस तेल में भिगोकर जला दे। उस दीपक पर खप्पर या पीतल का बर्तन लटका दे। उस बर्तन पर या खप्पर पर जो काजल एकत्र होगा, उसे आंखों में लगाकर रात्रि को पश्चिम की

ओर मुँह करके निम्न मंत्र तीन सौ बार जपे, साथ ही वह शुष्क कज्जल भी सामने रख दे।

: मंत्र :

'ओ३म् ऐं क्लीं ह्रीं श्रीं ग्लौं ब्लूं ह्रौं नमः कान्हेश्वरी सर्वान्मोहय मोहय कृष्णे वर्णे कृष्णाम्बर समन्विते सर्वानाकर्षय कर्षय शीघ्रं वशं कुरु कुरु हुं ऐं क्लीं श्रीं।'

इसके बाद उस शुष्क काजल को मंगलवार को नवनीत में मिलाकर लेप-सा बना ले, और उसे डिबिया में भर कर रख ले। उस काजल को लगाकर साधक जिसको भी देखेगा, वह निश्चय ही वश में होगा।

त्रिजटा ने एक और बात भी बताई, कि यदि इस काजल की एक छोटी-सी बिन्दी भी किसी पुरुष या स्त्री के पहने हुए कपड़े पर लगा दें, तो वह पुरुष या स्त्री भी वश में हो जाती है, और जैसा साधक कहेगा, वह स्त्री या पुरुष वैसा ही करने को बाध्य होगा।

त्रिजटा अघोरी ने पति वश में करने के तीन प्रयोग तथा पत्नी या स्त्री वशीकरण के पांच प्रयोग भी बताये।

पति वश में करने का एक प्रयोग निम्न है। इस प्रयोग के माध्यम से कठोर-से-कठोर पुरुष या पति को भी वश में किया जा सकता है। त्रिजटा के अनुसार इस प्रयोग से पति, प्रेमी, पिता, पुत्र या किसी भी पुरुष को वश में किया जा सकता है, और वह वही कार्य करेगा, जो उसे कहा जायेगा। यदि पति अन्य सुन्दर-से-सुन्दर प्रेमिकाओं के भी चक्कर में हो तो भी वह उनसे विमुख होकर साधक या प्रयोग कराने वाली के वश में इच्छावर्ती होकर रह जाता है। या अगर कोई प्रेमी हो, और किसी कारण से रूठ गया है, या घृणा करता है, या दूर चला

गया है, तो इस प्रयोग से वह उसी प्रकार खिच कर इशारों पर नाचने लगेगा, जिस प्रकार से संपेरे की बीन पर सर्प नाचने लगता है।

यह प्रयोग 'पुरुष (पति) वश्य वशीकरण' कहलाता है। इस प्रयोग के तीन भेद हैं—पहला प्रयोग ही किसी भी प्रकार के पुरुष को वश में करने के लिए काफी है, और अपने-आप में अदभुत प्रभावशाली है; दूसरा प्रयोग इससे तीव्र है, और वह प्रयोग पत्थर को भी अपने इशारे पर नाचने के लिए बाध्य कर सकता है; तीसरा प्रयोग तो इस क्षेत्र में 'तंत्र राज' कहलाता है, जिसकी शक्ति अपरिमित है, और उसके माध्यम से तो किसी को भी, साक्षात् इन्द्र को भी वश में किया जा सकता है; और जितने समय तक चाहे उसे अपने इशारों पर नचाया जा सकता है या वश में रखा जा सकता है। ऐसा प्रयोग तब किया जाना चाहिए, जबकि सामने वाला व्यक्ति स्वयं तांत्रिक हो, या जिस पुरुष पर वशीकरण करना है, उस पर पहले से ही तांत्रिक प्रभाव है, या किसी अन्य स्त्री ने उस पुरुष पर वशीकरण किया हुआ हो, यह तीसरा प्रयोग अत्यन्त शक्तिशाली एवं गोपनीय है।

त्रिजटा ने मुझे तीनों ही प्रकार के प्रयोग सिखाये; सिखाये ही नहीं अपने सामने सिद्ध करवाये और सिद्ध करवाने के बाद मेरे द्वारा उनका प्रयोग करवाया और उसका इच्छानुसार फल एवं पूर्ण प्रभाव देखकर ही सन्तोष की सांस ली।

मैं इन तीन प्रयोगों में से पहला प्रयोग लिख रहा हूँ, बाकी दो प्रयोग त्रिजटा के अनुसार स्मरण रखने चाहिए, लिखने नहीं चाहिए। पहला प्रयोग :

पुरुष वश्य वशीकरण प्रयोग—१ :

किसी भी रात्रि को प्रहर रात बीते जल में काले तिल मिलाकर उससे साधक स्नान कर ले, और फिर सर्वथा नंगा ही

साधक पहले से बिछाये आसन पर बैठ जाय, तथा पहले से ही तैयार दीपक जला दे, और सामने कांस्य-पात्र पर 'वशीकरण यंत्र' कुंकुम से बनाकर उसे पात्र के दीपक के ऊपर ढक दे और निम्न मंत्र की तीन मालाएँ फेरे—

'ओ३म् क्लीं कामाय क्लीं कामिन्यै क्लीम्।'

जब इस मंत्र की तीन मालाएँ पूरी हो जायं, तो जो काजल उस कांस्य-पात्र पर जमे उस पर से थोड़ा काजल अपनी जबान पर लगा दे, बाकी उस जमे हुए काजल पर पुनः 'वशीकरण यंत्र' तिनके से बनाये और उस पर पात्र को पुनः दीपक पर ढंक दे, तथा निम्न मंत्र की ग्यारह मालाएँ फेरे—

'ओ३म् नमः कालिकायै सर्वाकर्षिण्यै अमुकं मा कर्षय
कर्षय शीघ्र मानमानय ओं ह्रीं श्रीं भद्रकाल्यै नमः।'

इस मंत्र में जहाँ 'अमुक' शब्द आया है वहाँ उस पुरुष या पति का नाम लेना चाहिए।

इस प्रकार जब मंत्र-गणना समाप्त हो जाय, तो उस कांस्य-पात्र पर से काजल किसी कटोरी में ले लें, और डिबिया में बन्द कर रख दें।

१. इस काजल का छोटा-सा भी कण बताशे में या पानी में मिलाकर इच्छित व्यक्ति को पिलाने से वह वश में होता ही है।
२. या इस काजल की कोई लकीर उस पुरुष के पहने हुए वस्त्र पर लगा दे, तो वह वश में ही हो जाता है।
३. या ये दोनों ही कार्य संभव न हों तो इस काजल को किसी कटोरी में डाल उसमें शुद्ध मक्खन डाल निम्न मंत्र से मथने या हिलाने पर भी वह व्यक्ति वश में हो जाता है। हिलाते या मथते समय निम्न मंत्र को तीन सौ बार उच्चारण करना चाहिए—

मंत्र :

'ओ३म् नमो यक्षिण्यै अमुकं मे वश्यं कुरु कुरु नमः ।'

यहाँ पर भी 'अमुकं' के स्थान पर संबंधित व्यक्ति का नाम लेना चाहिए।

यदि ऊपर लिखी विधि को भली प्रकार से किया जाय तो इच्छित व्यक्ति निश्चय ही वश में होता है, दूसरा और तीसरा प्रयोग तो रामबाण एवं अचूक है ही, पर त्रिजटा की आज्ञा का उल्लंघन करना उचित नहीं, अतः उसे डायरी में भी अंकित करना ठीक नहीं।

पर त्रिजटा कितना सहृदय है, कि उसने मुझे दूसरा और तीसरा प्रयोग भी सिखाया है; सिखाया ही नहीं, अपने सामने बिठाकर सिद्ध कराया है, और सिद्ध कराने के बाद गाँव के एक पाषाण-हृदय पर प्रयोग भी मेरे द्वारा करा कर इसकी अचूकता भी सिद्ध करके बताई।

दिन काफी चढ़ आया है, उठूं शायद त्रिजटा गाँव से लौट रहा होगा।

२१ मई

स्थान—भैरव-मंदिर

वशीकरण का तो त्रिजटा अघोरी के पास खजाना है। पिछले चार दिनों से वह यही सब कुछ सिखाता रहा है। पुरुष वशीकरण की ही तरह स्त्री-वशीकरण के भी तीन स्तर हैं, तीन विधियां हैं, और तीनों ही अपने-आपमें अचूक हैं। इन प्रयोगों के माध्यम से किसी भी स्त्री को अपने मनोनुकूल वश में किया जा सकता है। पहले मुझे भी विश्वास नहीं आ रहा था, पर जब मैंने स्वयं प्रयोग करके देखा तो आश्चर्यचकित रह गया, दाँतों तले उँगली दबा लेनी पड़ी।

पहला प्रयोग ही अपने-आपमें शक्तिशाली एवं अचूक कहा

जा सकता है। अपनी पत्नी को सर्वथा इच्छानुसार बनाया जा सकता है। प्रेमिका को सर्वथा वश में किया जा सकता है और यहाँ तक संभव है, कि वह प्रयोग-कर्त्ता का ही कहना माने, और जैसा वह कहे, उसी के अनुसार करे; इसके अलावा वह अन्य किसी का भी कहना नहीं माने।

दूसरा प्रयोग अत्यन्त शक्तिशाली है, जो पत्थर को भी इच्छानुसार नचा सकता है; और तीसरा प्रयोग तो 'तंत्र राज' कहलाता है, जिसके माध्यम से व्यक्ति चाहे तो (त्रिजटा के शब्दों में) रंभा और उर्वशी को उँगली के इशारे पर नचा सकता है।

दूसरा और तीसरा प्रयोग गोपनीय है। पहला प्रयोग इस प्रकार है—

साधक को चाहिए कि वह स्नान कर भूमि पर ही बैठे, किसी भी प्रकार का आसन न बिछावे। इसके बाद गोरोचन से भोजपत्र पर निम्न मंत्र लिख दे—

'ओ३म् आगच्छ पद्मिनी अमुकीं में वशं कुरु कुरु स्वाहा।'

इसके बाद सफेद कपास की बत्ती लगाकर (घृत-सिंचित) उस पर कांस्य-पात्र ढक दे, कांस्य-पात्र पर पहले से ही पद्मिनी-यंत्र कुंकुम से अंकित कर दे, इसके बाद निम्न मंत्र की ग्यारह मालाएँ फेरे—

'ओ३म् कुम्भिनी मातंगी अमुकीं मे सर्वं कार्यार्थं वश्यं कुरु कुरु स्वाहा।'

जब ग्यारह मालाएँ हो जायें तो उस कांस्य-पात्र पर एकत्र काजल का कुछ अंश साधक अपनी जीभ के अग्रिम भाग पर लगावे, और इसके बाद निम्न मंत्र की पाँच मालाएँ (एक माला =१०८ मणियाँ) फेरे—

'ओ३म् पद्मिन्यै अमुकीं मे निश्चयं वश्यं कुरु कुरु नमः।'

इसके बाद कांस्य-पात्र हटा ले, तथा उस पर जमे काजल को एक डिबिया या कटोरी में ले ले।

१. इस काजल के कुछ अंश को दूध, चाय या बताशे के साथ इच्छित स्त्री को खिला दे तो वह निश्चय ही वश में होती है।
२. या इस काजल की बिन्दी उस स्त्री के पहने हुए वस्त्र पर लगा दे तो वह वश में हो जाती है।
३. यदि यह संभव न हो तो इस काजल को निम्न मंत्र के साथ नवनीत में मथे (तीन सौ बार मंत्र-उच्चारण) तो वह स्त्री अवश्यमेव ही वशवर्तिनी होती है—

'ओ३म् कामाक्षी अमुकीं मे वशं कुरु कुरु स्वाहा।'

आज त्रिजटा और मैं काफी दूर तक घूमने गये। उसने मार्ग में कई नवीन तथ्य उजागर किये। मारण, विद्वेषण व उच्चाटन के सैकड़ों प्रयोग उसे कंठस्थ हैं, न वह सिखाने में ननु नच करता है, और न मैं सीखने में कृपणता दिखाता हूँ। पिछले चार-पाँच दिनों से तो मैं बराबर जाग रहा हूँ, निद्रा-उच्चाटन से उसने मेरी नींद ही उड़ा दी है।

आज साँझ से ही मैं उदास हूँ, पता नहीं क्यों। मैंने त्रिजटा को भी कहा तो वह जोरों से खिलखिला पड़ा, और मुझे हाथों में उठाकर काफी देर तक नाचता रहा—कितना खुशमिजाज है, अघोरी—ऐसे मित्र पर तो सारे विश्व की सम्पदा तुच्छ है।

२७ मई
स्थान—भैरव-मन्दिर

काफी दिनों से अनुभव कर रहा हूँ, कि मुझे यहाँ से आगे चले जाना चाहिए। यह मेरा लक्ष्य नहीं है, मेरा लक्ष्य तो मंत्र-सिद्धि एवं हस्तरेखा व ज्योतिष ज्ञान है। तांत्रिक प्रयोगों में मैं बीच में ही उलझ गया हूँ—जब-जब भी मैं जाने का नाम लेता हूँ, तो त्रिजटा हँसकर टाल देता है, और फिर दिन-भर उदास

रहता है। मुझे ऐसा प्रतीत होने लगता है, जैसा मैंने त्रिजटा का दिल दुखाकर अपराध कर दिया हो। त्रिजटा ने कुछ ऐसा-स्नेह-संबंध जोड़ दिया है, कि न जाते बनता है न रुकते।

हाँ, त्रिजटा के ऋण को मैं इस जन्म में नहीं उतार सका। उसने इन थोड़े से दिनों में ही क्या कुछ नहीं सिखाया। गिनने बैठूं तो एक लम्बी सूची बन जाएगी—मोहन प्रयोग, स्तंभन प्रयोग उच्चाटन प्रयोग, विद्वेषण प्रयोग, मारण प्रयोग, वार्ताली मंत्र प्रयोग, अन्नपूर्णा मंत्र प्रयोग, स्वप्न वाराही एवं स्वप्नेश्वरी तंत्र प्रयोग, मणिभद्र मंत्र प्रयोग, घण्टाकर्णी मन्त्र प्रयोग, कर्ण पिशाचिनी मंत्र प्रयोग, कालकर्णी साधनम्, श्मशानी साधनम्, कपालिनी साधना, कामेश्वरी साधना, सुर-सुन्दरी साधना, नखकेशिका साधना, पद्मिनीसाधना, रतिप्रिया साधन-तंत्र, धनदा यक्षिणी तंत्र, पुत्रदा आम्रयक्षिणी मंत्र प्रयोग, उच्छिष्ट यक्षिणी साधन, भूत लोचन साधना, अष्ट किन्नरी साधना, विप्र चांडालिनी तंत्र, वैताल साधन प्रयोग, प्रेत साधन प्रयोग, श्मशान साधन प्रयोग, भैरव साधन, वट यक्षिणी चेटक, करालिनी चेटक, मणिभद्र चेटक, अनाहार चेटक, अघोर तंत्र, कीलन तंत्र, आदि प्रयोग सिखाये। सामने बैठकर सिद्ध कराये, और इसके बाद कहीं-न-कहीं प्रयोग कराकर जब उसे विश्वास आया, तभी उसने चैन लिया।

विद्वेषण का अर्थ है, दो व्यक्तियों में या दो शत्रुओं में झगड़ा करा देना, या पति-पत्नी या प्रेमी-प्रेमिका में झगड़ा करा देना।

मंत्र :

'ओ३म ह्रीं ग्लौ श्रौं अमुकस्य अमुकेन सह विद्वेषणं कुरु कुरु श्रौं ग्लौं ह्रीं स्वाहा।'

प्रयोग :

नित्य आधीरात को नग्नावस्था में एक लाख जपने से यह

मंत्र सिद्ध होता है।

जब मंत्र सिद्ध हो जाय, तब प्रयोगकर्ता अमुकस्य अमुकेन की जगह पात्रों का नाम लेकर मात्र ग्यारह सौ बार जपने से कार्य सिद्ध हो जाता है।

विद्वेषण स्थायी हो, इसके लिए बिल्ली के नख अभिमंत्रित कर दो व्यक्तियों में से किसी एक के घर में गाड़ दें, तो उन दोनों में जीवन-भर विद्वेषण बना रहेगा।

उच्चाटन तंत्र :

किसी व्यक्ति या स्त्री का किसी स्थान से मन उचाट कर देने को उच्चाटन कहते हैं। उच्चाटन से मन भ्रमित एवं शंकित हो जाता है। पति-पत्नी में, प्रेमी-प्रेमिका में, पिता-पुत्र में, भाई-भाई में या मित्र-मित्र के बीच उच्चाटन-क्रिया की जाती है। उच्चाटन सम्पन्न होने पर वे दोनों परस्पर शत्रु बन जाते हैं, तथा एक-दूसरे को हर दृष्टि से नुकसान देने की कोशिश में लग जाते हैं।

उच्चाटन के छ: प्रयोग हैं, जो क्रमश: ज्यादा प्रभावी कहे जाते हैं। मैं प्रारंभिक प्रयोग स्पष्ट कर रहा हूँ :—

प्रयोग :

मिट्टी के पात्र में खीर पकावे, और पकाते समय निम्न मंत्र का तीन सौ बार जप करे।

मंत्र :

'ओ३म् ह्रीं ग्लौं क्रीं भ्रौं भगवती दण्डधारिणी अमुकस्य अमुकं शीघ्रं उच्चाटनं उच्चाटनं रोधय रोधय भंजय भंजय श्रीं मायाराग्यै भ्रं भ्रं हुं हुं।'

(पर साधक को चाहिए, कि इस प्रकार के प्रयोग से पूर्व सवा लाख यह मंत्र जप कर सिद्ध कर ले।)

जब खीर पक जाय, तो उसे काले कुत्ते को खिला दे, खीर समाप्त होते ही उन दोनों में उच्चाटन हो जायगा।

यों उच्चाटन त्राटक प्रयोग भी है, जिससे किसी के द्वारा किये गये उच्चाटन के प्रभाव को समाप्त किया जा सकता है।

कल रात्रि को त्रिजटा ने 'श्मशान भैरव' सिखाया। इसकी साधना के लिए रात्रि को श्मशान में जाकर प्रयोग करना पड़ता है।

हकीकत में कहूँ तो यद्यपि मैंने त्रिजटा के अनुरोध से तांत्रिक विद्या सीखी है, पर मेरा मन नहीं मानता। ये सारी क्रियायें जुगुप्सित हैं। मुझे अब शीघ्र ही यह स्थान छोड़ देना चाहिए। जितना ही ज्यादा यहाँ रहूँगा उतना ही ज्यादा तंत्र में लिप्त होता जाऊंगा। जितना ही ज्यादा तंत्र में लिप्त होऊँगा, उतना ही ज्यादा मैं अपने लक्ष्य से दूर हटता जाऊँगा। आज त्रिजटा के आते ही जाने की बात साफ-साफ कह दूँगा, यही उचित है।

६ जून

स्थान—भैरव-मन्दिर

यह स्तंभन तंत्र भी अद्भुत है। स्तंभन का अर्थ है, रोक देना, ज्यों-का-त्यों रख देना। इसके माध्यम से अग्नि-स्तंभन किया जा सकता है, जिससे हाथ में अग्नि लेने पर भी वह शीतल लगती है, शरीर को या त्वचा को जलाती नहीं; जलस्तंभन करने पर नीचे चाहे कितनी ही आग जलाओ ऊपर का पानी गरम ही नहीं होगा; ज्यों-का-त्यों बना रहता है। आसन स्तंभन करने से व्यक्ति जमीन से चिपक-सा जाता है, अपने प्रयत्नों से या बल प्रयोग से उठ ही नहीं सकता; शस्त्र-स्तंभन से सामने वाले व्यक्ति का शस्त्र निष्फल हो जाता है, सर्प-स्तंभन से साँप रस्सीवत् गले में झूलने लगता है, गर्भ-स्तंभ करने से गर्भ गिरता नहीं, चाहे कुछ भी हो जाय, चाहे कितनी ही दवाइयाँ दे दी जायं, शत्रु स्तंभन से शत्रु गुलाम-सा बन जाता है, और हम जैसा

कहें, उसी प्रकार से करने लग जाता है।

शत्रुस्तंभन प्रयोग :

साधक को चाहिए कि पहले इस मंत्र को सिद्ध कर ले। सिद्ध करने के लिए मंगलवार से यह कार्य प्रारंभ होना चाहिए तथा लाल वस्त्र ही पहने, यथासंभव रात्रि में ही पश्चिमाभिमुख होकर एक लाख मंत्र जपे।

मंत्र

'ओ३म् नमो अग्नि वैताल स्वरूपाय अमुकं स्तंभनं कुरु कुरु स्वाहा।'

जब मंत्र सिद्ध हो जाय, तब साधक जिसको स्तंभन करना हो उस व्यक्ति का नाम मंत्र में 'अमुक' की जगह उच्चारित कर एक सौ आठ बार जपने से ही शत्रु स्तंभन हो जाता है, तथा गुलाम-सा हो जाता है। स्तंभन के बाद जिस प्रकार से भी चाहें उससे कार्य करवा सकते हैं। मुकदमे आदि में यह विशेष अनुकूल रहता है।

आज मैंने त्रिजटा को साफ-साफ कह दिया कि मैं अब जाना चाहता हूँ। यद्यपि यह बात सही है कि त्रिजटा मेरा गुरु है, मेरा मित्र है, मेरा प्रिय है, मेरा आत्मीय है, उससे बिछुड़ने की कल्पना से ही मेरा मन कैसा हो जाता है। दो दिन से मैं यह बात कहने की हिम्मत मन में संजो रहा था, पर कह नहीं पा रहा था, पर आज प्रातः वन-विचरण में कह दी। पहले तो उसने मजाक समझा, पर जब उसने मेरी आँखों में दृढ़ता देखी तो रुआँसा हो गया, और पहली बार—शायद पहली बार मैंने उसकी आँखों में नमी देखी। क्या किसी ने पत्थर को आँसू बहाते देखा है ? मैंने देखा है और यह भी देखा है कि त्रिजटा कितना सरल है, उसका दिल तो शिशुवत् है—वहीं दस मिनट तक शिला पर

शान्त लेटा रहा, और उसके बाद चुपचाप पहाड़ी की तरफ लौट गया, चुपचाप—बिना एक भी अक्षर बोले—मैं साथ था, पर ऐसा लग रहा था जैसे वह इस पृथ्वी पर सर्वथा अकेला ही हो।

पहाड़ी पर आने के बाद से वह शराब पी रहा है। पीता ही जा रहा है—न मालूम कितनी ही पी ली है। आज भैरव-मन्दिर में भी नहीं गया है, अपनी कुटिया में लेटा है,···निश्चल ···निःस्पन्द···उफ् !

१५ जून
ढढियारी ग्राम

त्रिजटा अघोरी से बिछुड़े आज पाँच दिन हो गये हैं, पर एक क्षण के लिए भी मैं उसे भूल नहीं पाया हूँ। जानता हूँ कि ज्यादा मोह ठीक नहीं; मोह पाँवों में बेड़ियाँ डाल देता है, आदमी की गति रुक जाती है, पर हृदय को वश में करना तो अत्यन्त कठिन है न, जितना ही ज्यादा उसे भुलाने का प्रयत्न करता हूँ, उतना ही ज्यादा वह स्मरण आता है······।

विदा होने का क्षण कितना मार्मिक था। भैरव-मन्दिर के सामने भैरव की साक्षी में, बोला—नारायण ! सोच रहा था तांत्रिक क्रियाओं से मैं दुनिया को जीत सकता हूँ, किसी को भी अपना बना सकता हूं, पर तू ने तो मुझे दिल से जीता है। तेरे साथ रह कर तो मैं घरबारी हो गया था, एकान्त खलने लग गया था, सोचने लग गया था, कि घर बसा लूँ, किसी को भाई बना लूँ किसी के साथ रहूँ···पर···पर···।

मैं चुप रहा—मेरा स्वयं का कण्ठ अवरुद्ध हो गया था, बोल चाहते हुए भी फूट नहीं रहे थे। मौन तोड़ा त्रिजटा ने, तुझे क्या दूँ ? मेरे पास है भी क्या तुझे देने को.—और कहते-कहते चाकू से उसने अपनी जाँघ चीर ली, और उसमें से एक सफेद उज्ज्वल स्फटिक-सी गोली निकालकर (पानी से धोकर कपड़े से पोंछकर)

मुझे देते हुए बोला, यह 'रतिराज गुटका' है, 'यह क्या है, इस बात को तो मैं बता ही चुका हूँ उस दिन, पर यह बात तुझसे छिपा दी थी, कि यह गुटका मेरे पास है, यह मेरे गुरु ने मुझे दिया था। त्रैलोक्य की सम्पदा, भी इसके सामने तुच्छ है—हेय है—नगण्य है—मैं जीते-जी इसे किसी को नहीं देना चाहता था, पर अब मैं कितना जिन्दा रहूँगा यह नहीं जानता। यह गुटका आज से तेरा है, अपने प्राणों से भी ज्यादा इसे संभाल कर रखना, और कहते-कहते वह रो पड़ा। आँसू आँखों से निकल कर गालों पर से होकर बहने लगे, हिचकियाँ भर गईं, और अपने दोनों हाथों में मुँह छिपा कर वह बैठ गया—उफ् ! क्या विछोह इतना दारुण कष्टकर होता है।

मैं पहाड़ी से नीचे उतर आया। त्रिजटा मेरे साथ था। पहाड़ी से उतरने के बाद भी काफी दूरी तक वह मेरे साथ आया। बार-बार वापिस आने का आग्रह करता रहा, कसमें देता रहा; और जब मैंने वायदा किया कि जब भी समय मिला, मैं जरूर तुमसे मिलने आऊँगा, आता रहूँगा, तब उसे सन्तोष हुआ।

रास्ते से बिछुड़ते समय उसकी आँखों में फिर आँसू छलछला आये थे, और मेरे सीने को अपने सीने में लेकर फफक पड़ा था, और फिर अचानक लौट पड़ा था भारी मन···उदास हृदय···

वह लौटता जा रहा था, और पीछे मुड़-मुड़ कर देखता जा रहा था। मैं खड़ा था वहीं रास्ते पर ही, चित्रवत्, मूर्तिवत्··· आँखों में पानी छलछला आया था। काफी समय तक खड़ा रहा, जब तक कि वह आँखों से ओझल नहीं हो गया।

त्रिजटा मेरे जीवन में तूफान की तरह आया और अंधड़ की तरह चला गया। अपनी सैकड़ों स्मृतियों को यादगार के रूप में छोड़कर···उफ् !

मानता हूँ, कि तंत्र-शास्त्र अपने-आप में जबरदस्त विद्या है, जो असंभव को भी संभव करने में समर्थ है। इसके मंत्र अपने-आप में प्रामाणिक हैं, पूर्ण हैं, विश्वसनीय और अद्‌भुत प्रभावपूर्ण हैं। हाँ, इन मंत्रों को पहले सिद्ध करना जरूरी है, साथ ही यह भी जरूरी है, कि इन मंत्रों की साधना, योग्य—मैं यहाँ 'योग्य' शब्द पर विशेष जोर दे रहा हूँ—गुरु के सान्निध्य में रहकर ही करनी चाहिए। यदि गुरु स्वयं तांत्रिक क्षेत्र में सिद्ध नहीं है तो एक तरफ वह स्वयं का अहित करता है वहीं दूसरी ओर वह शिष्य को भी पागल कर देता है, उसे बरबाद कर देता है।

···इन दिनों चित्त भ्रमित है, जितना ही ज्यादा चित्त को एकाग्र करने की कोशिश करता हूँ उतनी ही ज्यादा बेचैनी, उलझन एवं परेशानी बढ़ जाती है, धीरे-धीरे ऐसा लग रहा है, जैसे मैं अपने स्वयं के नियन्त्रण में नहीं हूँ, कोई अदृश्य शक्ति मुझे बरबस खींच रही है। धीरे-धीरे स्मरण-शक्ति भी कुछ-कुछ कमजोर होती जा रही है। तंत्र से सम्बन्धित कुछ मंत्र यहीं पर लिख लूं, साधना-विधि तो स्मरण है, और रहेगी भी—

१. सर्व जन वशीकरण मंत्र

'ओ३म् हुम् उड्डीक महेश्वराय हुं हुं हुं सर्वजन मोहय मोहय मिलि मिलि ठं ठं हुं।'

इक्यावन हजार जपने से यह मंत्र सिद्ध होता है, और इसके द्वारा पूरी सभा को या समूह को या भीड़ को पूरी तरह वश में किया जा सकता है।

२. राज वशीकरण

यहाँ राजा से तात्पर्य अपने से उच्च अधिकारी, मंत्री या

व्यक्ति समझना चाहिए। यह मंत्र तीस हजार जपने से सिद्ध होता है, तथा इसका प्रयोग भी सरल है—

'ओ३म् भास्करं मास्कराय अमुकं मे वश्यं कुरु कुरु ठं हुं क्रौ हुँ ठं स्वाहा।'

३. शत्रु वशीकरण

'ओ३म भुजबल शस्त्र पराक्रम अमुकं शत्रुं बंधय बंधय त्रासय त्रासय स्फोटय स्फोटय धुं धुं हुँ वश्यं ठं क्रौं धुं स्वाहा।'

इस मंत्र का जप इक्कीस हजार करने से सिद्ध होता है, तथा प्रयोग में सिन्दूर, गोरोचन तथा गूलर के फूलों का प्रयोग होताहै।

४. स्त्री आकर्षण मंत्र

'ओ३म् ठं झं त्र अमुकीं मे आकर्षयम्र ाकर्षय त्रं झं ठं स्वाहा।'

यथासंभव इस कार्य में सावधानी बरतें, यह मंत्र एक लाख जपने से सिद्ध होता है, इसमें ब्रह्मदण्डी के बीजों का प्रयोग किया जाय तो प्रभाव तुरन्त एवं शीघ्र फलदायी होया है।

त्राटक

शुक्राणु कमजोर हों, या वीर्य पतला हो अथवा सन्तान होने में कोई बाधा आ रही हो तब इस मंत्र का प्रयोग होता है।

इस मंत्र का जप पैंतीस हजार है तथा यंत्र चाँदी का बनता है—

मंत्र :

'ओ३म् ह्रीं द्रुं सं विश्वंभराय त्राटय सं द्रं ह्रीं ओ३म् स्वाहा।

मारण तंत्र

यथासंभव इस मंत्र का प्रयोग या उपयोग नहीं करना चाहिए, जब प्राणों पर ही आ बने, तभी इसका प्रयोग होना

चाहिए।

इस मंत्र का प्रयोग शत्रु को मारने या समाप्त करने के लिए होता है।

मंत्र :

'ओ३म् श्रुं हुं क्षं त्रं अमुकं त्रं चण्डालिनी कामाख्या क्लीं क्लीं ठं ठं स्वाहा।'

अग्नि-स्तंभन

इस मंत्र से अग्नि का स्तंभन किया जा सकता है, अर्थात् अग्नि भले ही जलती रहे, पर उसमें उष्णता न रहे, हाथ में लेने पर भी वह जलावे नहीं। यदि उसके ऊपर पानी रख दिया जाय, और घण्टे भर तक वह अग्नि जलती रहे, पर फिर भी ऊपर का पानी वैसा का वैसा रहे।

मंत्र

'ओ३म् नमः अग्नै त्वं घ्रां घ्रीं घ्रूं स्तम्भनं स्तम्भनं हुं हुं हु स्वाहा।'

पहले इस मंत्र को एक लाख बार जप कर सिद्ध कर लेना चाहिए, उसके बाद कहीं पर भी इसका प्रयोग किया जा सकता है, प्रयोग में सरसों का उपयोग होता है।

आसन-स्तम्भन

जिस प्रकार से अग्नि-स्तंभन होता है, उसी प्रकार से आसन-स्तंभन भी होता है। इसमें सामने वाला व्यक्ति जमीन से चिपक-सा जाता है, प्रयत्न करने पर भी उठ नहीं सकता ; प्रयोग-विधि अग्नि-स्तंभन के समान ही है।

मंत्र :

'ओ३म् दिगम्बराय विराटाय, जगद्विकासाय अमुके अमुकं आसनं स्तंभनं कुरु कुरु श्रं श्रं श्रं स्वाहा ।'

इस प्रयोग में विशेष एवं अद्भुत अचूक सफलता के लिए घुंघची के बीजों का प्रयोग करना चाहिए।

शस्त्र-स्तंभन

अग्निस्तंभन एवं आसन-स्तंभन की तरह शस्त्र-स्तंभन भी होता है, इसके लिए भी प्रयोग-विधि वही है, तथा इसमें भी घुंघची के बीजों का ही प्रयोग होता है। इस मंत्र को क्षण विशेष में उच्चारण करने मात्र से ही सामने वाला शत्रु चकित-भ्रमित हो जाता है, तथा वह शस्त्र से या पिस्तौल से वार करने में समर्थ नहीं रहता। एक प्रकार से उसके हाथ इतने अशक्त हो जाते हैं कि उसके हाथों से शस्त्र छूट कर नीचे गिर जाता है।

पहले विशेष विधि से इस मंत्र को एक लाख बार जप कर सिद्ध कर लिया जाता है।

मंत्र

'ओ३म् नमो नैकषा महा रुद्र गर्भ संभवात् शस्त्र-स्तंभनं रुद्राज्ञापयं हुं ठं ठं ठं स्वाहा ।'

बुद्धि-स्तंभन

इसका प्रयोग शत्रु पर होता है तथा उसकी बुद्धि कुंठित कर दी जाती है। वह चाहे कितना ही विद्वान, बुद्धिमान तथा समझदार हो, इस प्रयोग के बाद उसका आचरण सामान्य पागल के समान हो जाता है, न तो ठीक से उत्तर दे पाता है, न भली प्रकार से व्यवहार ही कर पाता है।

मंत्र

'ओ३म् नमो विश्वामित्राय नमः गर्भस्तूपाय अमुके बुद्धि-स्तंभनाय कुरु कुरु स्वाहा ।'

अमुके की जगह शत्रु का नाम उच्चारण करना चाहिए। इक्कीस हजार जपने से यह मंत्र सिद्ध होता है।

सर्प-स्तंभन

'ओ३म् प्लं श्रं क्षं ज्ञं सर्प कुलं मम वश्यं हुं हुं स्वाहा ।'

यह इक्कीस हजार जपने से सिद्ध होता है, तथा प्रयोग के समय लोहे की कील का प्रयोग किया जाता है।

गर्भ-स्तंभन

किसी महिला के बार-बार गर्भपात हो जाता हो तो उस समय गर्भस्तंभन प्रयोग सबसे अधिक उपयुक्त एवं लाभदायक रहता है।

मंत्र

'ओ३म् नमो रुद्राय कर पाश धारणाय अमुकस्य गर्भस्तंभन कुरु क्लीं श्रं कुरुं स्वाहा ।'

इस मंत्र को एक लाख बार जपने से यह मंत्र सिद्ध होता है, तथा एरण्ड-बीजों का प्रयोग किया जाता है।

ज्वर-नाशन प्रयोग

यह मंत्र पैंतीस हजार जप कर सिद्ध किया जाता है, तथा किसी भी प्रकार के बुखार को दूर करने के लिए सिद्ध है।

मंत्र

'ओ३म् सिद्धं ज्वर नाशने सर्वारिष्ट प्रशान्तये शान्ति कुरु कुरु स्वाहा ।'

इसकी सिद्धि के लिए श्मशान-साधना करनी पड़ती है, तथा कपास के बीजों का प्रयोग होता है। एक लाख मंत्र जपने से यह सिद्ध होता है। सिद्ध होने के बाद जिस किसी को भी भूत-प्रेत लगा हो उसे भगाने या जिस घर में भूत-प्रेत उपद्रव हो उसे शान्त करने के लिए इस मंत्र का प्रयोग किया जाता है।

मंत्र

'ओ३म् नमो वैतालाय, वीर रूपाय, रुद्र भैरवाय
क्षं क्षं क्षं भूतादिकं पलायनं हुं हुं हुं स्वाहा।'

साधक को इस मंत्र को जपते समय पूरी-पूरी सावधानी एवं सतर्कता बरतनी चाहिए।

शरीर-रक्षण

शत्रुओं, तांत्रिकों आदि से अपनी शरीर-रक्षा के लिए इस मंत्र को जपकर स्वयं का शरीर बांध दिया जाता है जिससे उस पर किसी का प्रयोग न चले। पहले एक लाख बार मंत्र जाप कर इसे सिद्ध कर दिया जाता है—

मंत्र

'ओ३म् नमः परमात्मने अंजनीसुताय हुं हुं हुं मम शरीरं
बन्धनाय रक्षां कुरु कुरु स्वाहा।'

सुख प्रसव :

गर्भिणी के सुखपूर्वक प्रसव न हो रहा हो, तथा वह कष्ट पा रही हो तो इस मंत्र का पांच बार जप कर देने मात्र से वह उस कष्ट से मुक्ति पा लेती है, पर इससे पूर्व इस मंत्र को इक्कीस हजार जप कर सिद्ध कर लेना चाहिए—

'ओ३म् नमो मन्मथ कामरूपाय कष्ट क्षरण
लम्बोदरं मुंच मुंच स्वाहा।'

निधि दर्शन :

पहले विशेष मंत्रों से अंजन बनाया जाता है, तथा फिर उस पर प्रयोग होता है। उस अंजन को जो भी आँज लेता है, उसे भूमि में गड़ी हुई चीज, धन या खजाना दिखाई देने लग जाता है।

मंत्र

'ओ३म् शूलिनी यक्षयक्षिणी, महारुद्राय भैरवी पुरुषाय पृथ्वी-
धराचार्य मम नेत्रे अदृश्य दृश्यं कुरु कुरु स्वाहा।'

त्रिकाल-दर्शन

यह मंत्र सिद्ध करना अत्यन्त कठिन एवं दुष्कर है, फिर भी धैर्यपूर्वक प्रयोग करने से व्यक्ति सफल हो जाता है। पाँच लाख जपने से यह मंत्र सिद्ध हो जाता है—

'ओ३म् ह्रीं ह्रूं ह्रैं द्रुं द्रें द्रं सः सः द्रं द्रें द्रुं ह्रैं ह्रूं ह्रीं
ओ३म् स्वाहा।'

इस मंत्र के सिद्ध होने से सामने वाले व्यक्ति का भूत-भविष्य-वर्तमान चित्रवत् आँखों के सामने घूम जाता है।

पशु-दुग्ध वर्धक प्रयोग

इक्कीस हजार जपने से यह मंत्र सिद्ध होता है।

मंत्र

'ओ३म् नमो हुंकारिणी फेत्कारिणी दुग्ध वर्धिनी
पशु शालायां ममाकूनुले कार्यं कुरु कुरु स्वाहा।'

वशीकरण सुपारी

मंत्र सिद्ध करने के बाद किसी सुपारी पर इक्कीस बार जपने से वह सुपारी वशीकरण युक्त हो जाती है, तथा इसके बाद वह सुपारी जिसको खिलाई जाती है वह खिलाने वाले के वश में पूरी तरह हो जाता है।

मंत्र

'त्र्यम्बकं त्रिलोचनाय अमुकं मे वश्यं कुरु कुरु स्वाहा।'

शिश्न दृढ़ मंत्र

हस्तमैथुन या अन्य किसी कारण से लिंग निर्जीव-सा हो जाता है, या दृढ़ नहीं होता, या संभोग में सक्षम नहीं रह पाता, तब इस मंत्र का प्रयोग होता है। पहले एक लाख जप कर यह मंत्र सिद्ध किया जाता है, फिर छोटा-सा वस्त्र मंत्रसिद्ध कर व्यक्ति को दे दिया जाता है। जब तक वह वस्त्र उसके पास रहेगा, उसका लिंग दृढ़ रहेगा, तथा कामकला में पूर्ण तृप्ति अनुभव कर सकेगा।

मंत्र

'ओ३म् ठं ठं ह्रीं ह्रीं क्रूं क्रूं श्नें श्ने ठं ठं स्वाहा।'

यदि इस मंत्रसिद्ध वस्त्र को शिश्न पर घण्टे-भर तक लपेट कर रखा जाय, तो लिंग दृढ़ हो जाता है।

कर्ण पिशाचिनी मंत्र

यह मंत्र जगविख्यात है, तथा इस मंत्र के सिद्ध करने पर साधक के कान में पिशाचिनी सामने बैठे व्यक्ति के भविष्य को साफ कह देती है।

मंत्र

'ओ३म् क्लीं श्रीं ह्रीं ठं ठं देवपुत्री कर्ण पिशाचिनी स्वर्ग निवासिनी वार्ता कथय कथय हुं श्रीं क्लीं ह्रीं फट् स्वाहा।'

आधा सीसी मंत्र

'ओ३म् ठं क्षं त्रं आधा शीशी हरो त्रं ज्ञं ठं स्वाहा।'

कण्ठ बेल मंत्र

'ओ३म् धूम्राक्षी द्रुमवासिनी कण्ठबेल निवारिणी मम समस्त कामना सिद्धि कुरु कुरु स्वाहा।'

पीलिया का मन्त्र

'ओ३म् तुवार हारपीताय रोग ज्वराय पीताय निवारणं ठं ठं स्वाहा।'

समस्त कार्य-साधन मन्त्र

'ओ३म् ज्ञान वासिनी रुद्र भैरवी त्रिपुर वासिनी ज्ञं स्यात्रं त्रं यानं प्रश्वानं मम समस्त कार्यं हुं सिद्धि कुरु कुरु हुं स्वाहा।'

तन्त्र का प्राचीनत्व

तन्त्र-ग्रन्थों के लेखन का प्रारम्भ कब से हुआ इस बात को लेकर पंडितों में काफी मतभेद है। कुछ विद्वान कहते हैं कि तन्त्रों की सृष्टि पुराणों के बाद हुई है, लेकिन पुराणों में वैदिक और तांत्रिक दोनों प्रकार की उपासना-पद्धति का विधान है, इसलिए तन्त्र की सृष्टि पुराण के पहले हुई है, यह बात स्वीकार करना ही तर्क-संगत प्रतीत होता है। कुछ विद्वानों का यह विचार है कि बौद्ध-युग के बाद तन्त्रों की सृष्टि हुई है, लेकिन बौद्धों की प्रमुख पुस्तक 'ललित विस्तार' में यह देखा जाता है कि स्वयं बुद्ध-भगवान् ने तन्त्रसिद्ध विष्णु, कात्यायनी और गणपति-पूजा की निन्दा की है इसलिए बौद्ध-युग के बाद तन्त्र की सृष्टि हुई है, इसे मानने का कोई कारण और युक्तिसंगत प्रमाण नहीं है।

नारायणीय तन्त्र में कहा गया है कि जामल से वेद की उत्पत्ति हुई है। जामल एक प्रकार का तन्त्र-ग्रन्थ है। नारायणीय तन्त्रक् के मतानुसार ब्रह्म जामल ग्रन्थ में सामवेद की, रुद्र जामल ग्रन्थ में ऋग्वेद की, विष्णु जामल ग्रन्थ में यजुर्वेद की और शक्ति जामल ग्रन्थ में अथर्ववेद का मूल निहित है। इसी से यह माना जा सकता है कि तन्त्रों की सृष्टि वेद के भी पहले हुई है, अवश्य ही इसके लिए तर्क की गुंजाइश है। इसका निर्णय तो निपुण गवेषणा के आधार पर ही हो सकता है। इसके सम्बन्ध में दो-चार बातें मैं यहाँ कहना उचित समझता हूं।

मोहनजोदड़ो और हरप्पा में जो प्राचीन सभ्यता के चिन्ह हैं, उसे विद्वान लोगों ने वैदिक-आर्य सभ्यता की पहली किरण कहकर पुकारा है। विद्वान लोगों ने यह भी प्रमाणित किया है

कि इन दो स्थानों पर उस काल में शिव (लिंग) और शक्ति (मातृ) की पूजा प्रचलित थी। इसलिए तन्त्र में वर्णित शिव और शक्ति की आराधना वैदिक युग के पहले भी प्रचलित थी, यह माना जा सकता है। वस्तुतः तन्त्रोक्त अनुष्ठान बहुत प्राचीन काल से ही पृथ्वी के विभिन्न देशों में आदिम आदिवासियों के भीतर प्रचारित थे। विद्वानों के विचार से तन्त्रोक्त षट्कर्म, मद्य आदि का व्यवहार, मन्त्र-शक्ति पर विश्वास, विभिन्न प्राचीन जातियों के भीतर देखा जाता है। दूसरों को वश में करने की विभिन्न क्रियायें प्राचीन काल में खास रूप से प्रचलित थीं। मोम या उसी तरह के अन्य पदार्थ से किसी विशेष व्यक्ति की मूर्ति बनाकर उसी मूर्ति को अभिमंत्रित करना या अग्नि में द्रवीभूत करने की प्रथा सैमेन्टिक जाति के भीतर प्रचलित थी। उपासना के आंगिक रूप में स्त्री-संगादि कार्य प्राचीन ग्रीस और रोम में पान-पूजा में प्रचलित था। धर्मोत्कर्ष लाभ के लिए मादक द्रव्य का व्यवहार विभिन्न देशों के आदिम आदिवासियों के भीतर देखा जा सकता है।

निष्ठाशील तांत्रिकों का विश्वास है कि वेद की उत्पत्ति के पहले ही तन्त्र की उत्पत्ति हुई है। गुरु-शिष्य-परम्परा के अनुसार शास्त्र कंठ-कंठ में प्रचारित था। पुस्तकें उपलब्ध नहीं थीं, अनार्यों के भीतर उन्हीं की भाषा में तन्त्र प्रचलित था, इसके बाद आर्य लोगों ने इस देश में प्रवेश किया। वैदिक आचारशील ब्राह्मण इस देश में आकर ज्यादा दिन तक अपने पिता और पितामह की उपासना-पद्धति और ज्ञान में प्रतिष्ठित न रह सके। तन्त्र-धर्म के साथ मिलन होने के कारण तन्त्र पर उन लोगों का अनुराग पैदा हुआ। तन्त्र के उदार धार्मिक सिद्धान्त को ग्रहण करने की उन्होंने इच्छा प्रकट की, फिर वैदिक आचार भी छोड़ना उनके लिए कठिन था। तब एक समझौते की स्थिति का निर्माण हुआ। गृहस्थ आश्रम के पूर्व तक वैदिक दीक्षा, विवाह के बाद गृहस्थाश्रम में प्रवेश करने

के बाद तान्त्रिक दीक्षा और तान्तिक साधना । आर्य लोगों ने जब तन्त्र-धर्म को ग्रहण किया तो उन्होंने संस्कृत भाषा में तन्त्र की पुस्तकें लिखना भी प्रारम्भ किया । इससे तन्त्र-शास्त्र-सम्बन्धी पुस्तकें भी वृद्धि पाने लगीं, किन्तु इससे उदार तन्त्र का सार्वजनिक रूप नष्ट होने लगा । ब्राह्मण धर्म का प्रभाव भी धीरे-धीरे तन्त्र में प्रवेश करने लगा । जाति-भेद-हीन तन्त्र में चतुर्वर्ण का प्रश्न आया । बाहर के शौचाचार-शून्य तन्त्र में ब्राह्म शौच का आचार आया । क्रियामूलक तन्त्र ज्ञानमूलक हुआ, यहाँ तक कि सांख्य, पातंजल, वेदान्त दर्शन के तत्त्वों ने भी तन्त्र को प्रभावित किया । इस प्रकार से वैदिक संस्कारों के साथ सामंजस्य का विधान करके प्रयोजन के अनुसार तांत्रिक आचारों को आर्य लोगों ने ग्रहण किया । इसीलिए मूल तन्त्र-धर्म और मूल ब्राह्मण-धर्म कोई एक भी विरुद्ध न रह सका । अतएव आर्य लोगों द्वारा संस्कृत भाषा में लिखे गये तन्त्र-ग्रन्थों के विरुद्ध तन्त्र-धर्म के चिन्ह मिलने की सम्भावना कम ही है । इन ग्रन्थों में कौलाचार का वैदिकत्व प्रतिपादित हुआ है । 'कुलार्णव तन्त्र' में कुल शास्त्र को वेदात्मक कहकर कुलाचार की श्रुति उद्धत हुई है । तिब्बत और चीन में बौद्ध-तन्त्र के भीतर तन्त्र के कुछ मूल अनुष्ठान गुप्त थे, उसका अनुसंधान आज भी कठिन है । तिब्बत और चीन के बौद्ध लोगों ने तन्त्र को भारतवासियों की तुलना में अधिक अंश में ग्रहण किया, मगर बौद्धों के द्वारा भी तन्त्र की विकृति कम नहीं हुई । अभिचार-क्रिया बौद्ध लोगों के हाथ में तन्त्र का एक प्रधान अंग बन गया था, इसलिए विशुद्ध तन्त्र तो बौद्ध-ग्रन्थों में भी मिलना संभव नहीं है । अवश्य ही आर्यों द्वारा रचे गये तन्त्र-ग्रन्थों में तन्त्र का तत्त्व तुलनात्मक रूप में अविकृत रूप में मौजूद है । इसके बाद के रचित तन्त्र-ग्रन्थों में शिव-प्रचारित तन्त्र-धर्म की विकृति हुई है, फिर आश्चर्य का विषय यह है कि इन्हीं तन्त्र-ग्रन्थों के तथ्य और भाषा का विचार करके विद्वान् लोगों ने तन्त्र-धर्म के

प्राचीनत्व के बारे में तुलनात्मक आलोचना की है । इसी आधार पर उन्होंने यह प्रमाणित करने की चेष्टा की है । तन्त्र—वेद, बौद्ध-साहित्य और पुराण के बाद की रचना है । हमारा विचार है कि तन्त्र-ग्रन्थ के काल को तन्त्र-धर्म का ही समय निरूपित करना सचमुच गलत होगा । अगर ईसाई धर्म के सम्बन्ध में कोई प्रामाण्य पुस्तक बीसवीं शताब्दी में लिखी जाय तो क्या ईसाई धर्म को बीसवीं शताब्दी का धर्म कहना सही होगा ? इसलिए यह कहना उचित प्रतीत होता है कि तन्त्र-धर्म बहुत पुराना होने पर भी तंत्र-ग्रंथ उतने पुराने नहीं हैं । वास्तविक रूप में अनेक ग्रंथों में तन्त्र की आधुनिकता की छाप स्पष्ट है । योगिनी तन्त्र में कच विहार राजवंश के प्रतिष्ठाता श्री विष्णुसिंह का विवरण मिलता है । विश्वसार तंत्र में वैष्णवकुल तिलक नित्यानन्द पाद का जन्म-वृत्तांत मिलता है । मेरु तंत्र में अंग्रेज जाति व लंदन का उल्लेख है, यह अंश विस्तार से होने के कारण इन उल्लिखित ग्रन्थों के आधुनिक होने में सन्देह का अवसर ही नहीं रहता । साफ है कि ये आधुनिक ग्रन्थ शिव-प्रचारित याअ पौरुषेय नहीं कहे जा सकते, लेकिन कुछ तन्त्र-ग्रन्थों के आधुनिक होने से हम सभी ग्रन्थों को आधुनिक नहीं कह सकते । वास्तव में तन्त्र-ग्रन्थों के अन्तर्गत अनेक ग्रन्थ बौद्ध-ग्रन्थ और पुराणों से भी प्राचीन हैं, इसके अनेक प्रमाण हैं ।

शिवोक्त तन्त्र-धर्म वैदिक धर्म से भी पुराना है—निष्ठाशील तान्त्रिक लोगों का यह विचार सत्य होने से वैदिक धर्म में भी तन्त्र-धर्म का प्रभाव विद्यमान रहना स्वाभाविक है । इस विषय में अनुसंधान करने से प्रमाणित होता है कि तान्त्रिक यन्त्र और चक्र का वर्णन, अथर्ववेद, तैत्तिरीय, आरण्यक आदि ग्रन्थों में में मिलता है । ऐतरेय-आरण्यक में तान्त्रिक मंत्र के समान एक मंत्र मिलता है । सायनाचार्य के विचार के अनुसार वह मंत्र अभिचार-क्रिया में प्रयोग किया जाता है । धर्म-कार्य में इंद्रिय-उपभोग

का उल्लेख भी वेद में मिलता है। शतपथ ब्राह्मण, वृहदारण्यक उपनिषद् आदि में स्त्री-संग आदि का आध्यात्मिक भाव दिखाया गया है। वामदेव उपासना का स्पष्ट निर्देश है कि स्त्री का परित्याग कभी नहीं करोगे, मद्य का व्यवहार भी वेद में देखा जाता है, सौत्रामणि यज्ञ में इन्द्र, सरस्वती व अश्विनी-द्वय के सुरादान करने का विधान है। वाजपेय यज्ञ की भी यही विधि है। सुरा बनाने की विधि का भी वेद में उल्लेख है। तान्त्रिक अनुष्ठान की तरह वैदिक यज्ञ में पशु-हत्या करने की प्रथा थी। तान्त्रिक षट्-कर्म जैसे कर्म का विवरण अथर्ववेद में अनेक स्थानों पर मिलता है।

ऋग्वेद के दशम मंडल में १४५ और १५९ सूक्त में सपत्नी का विनाश और पति को वश में लाने की चर्चा भी है। तैत्तिरीय ब्राह्मण (२।३।१०) से विदित होता है कि प्रजापति दुहिता सीता ने सोम को वश में लाने के लिए अभिचार-क्रिया का आश्रय लिया था। वैदिक और तान्त्रिक आचार के बीच इन समानताओं से विद्वान लोगों का विचार है कि तन्त्र-शास्त्र का मूल वेद में निहित है। उन लोगों की धारणा यह भी है कि तन्त्र-शास्त्र का विचार अथर्ववेद के सौभाग्यकांड से लिया गया है। निष्ठाशील तांत्रिकों के सिद्धान्त को अगर माना जाय तब इन सादृश्यों को ही वैदिक धर्म के ऊपर तन्त्र-धर्म का प्रभाव कहकर माना जा सकता है।

वैदिक और तांत्रिक साधना के बीच समय-निरूपण की यह चेष्टा स्थूल ऐतिहासिक दृष्टि से ही की जाती है। वास्तविक रूप में ऐसा तुलनामूलक विचार ही हास्यास्पद है, क्योंकि वेद और तंत्र तिव्य, अपौरुषेय ज्ञान के ही प्रकारान्तर से भेद हैं।

तन्त्रोक्त भाव और आचार

तन्त्र-शास्त्र में मनुष्य के दिव्य, वीर और पशु ये तीन भेद कहे गये हैं। इन तीन प्रधान भावों के बीच और अनेकों अप्रधान भावों का उल्लेख 'भाव चूड़ामणि तन्त्र' में किया गया है। तांत्रिक साधना में इन तीन भावों के निर्णय का एक खास महत्व है, क्योंकि तन्त्र-शास्त्र भी अन्यान्य शास्त्रों की तरह इस विचार पर विश्वास रखता है कि सभी मनुष्यों के लिए एक ही प्रकार की साधन-प्रणाली का विधान नहीं हो सकता। कौन किस भाव का मनुष्य है—यह जाँच करके ही इसका निर्णय हो सकता है कि कौनसी साधना उसके लिये उपयुक्त होगी। उसके अनुसार ही गुरु उन्हें दीक्षा प्रदान करते हैं। 'कामाख्या तंत्र' में दिव्य भाव, वीर भाव, और पशु भाव के मनुष्य का वर्णन इस प्रकार है :—

दिव्य: दिव्य: सर्वं मनोहारी मितवादी स्थिरासन: ।
गम्भीर: श्लिष्टवक्ता च शत विधानक: सुखी ॥
गुरुपादाम्बुजे भीरुः सर्वत्र भववर्जित: ।
सर्वदर्शी सर्वं वक्ता सव द्रष्टा निवारक: ।
सर्वं गुणान्वितो दिव्य: सोऽहं किं बहुकाम्यत: ॥

वीर: निर्भयो भयदो वीरो गुरु भक्ति परायण: ।
वाचालो बलवान् शुद्ध: पंचतत्वे सदा रता: ॥
महोत्साहो महाबुद्धिर्महा साहसिकोऽपि च ।
महाशय: सदा देवि ! साधुना पालने रत: ॥
तमोमय: सदा वीरो विनयेन महोत्सुक: ।
एवं बहुगुणैर्युक्तो वीरो रुद्र: स्वयं प्रिये ॥

पशु: पशून् शृणु महादेवी, सर्व देवबहिष्कृतान् ।
अधमान् पापचिन्नांश्च पंचतत्व-विनिन्दकान् ॥

प्राय: प्रत्येक तन्त्र-ग्रन्थों में इन्हीं तीन भावों का उल्लेख है। कुछ एक तन्त्र-ग्रन्थों में तो तीन भावों का विस्तृत वर्णन है ।

उपरोक्त तीन भावों को मिलाकर तन्त्र मतानुसार सात आचार हैं । 'कुलार्णव तन्त्र' में सात आचारों के नाम इस क्रम के अनुसार वर्णित हुए हैं—वेद, वैष्णव, शैव, दक्षिण, वाम, सिद्धान्त और कौल ।

एक-एक को पार करते हुए साधक क्रमशः कौलाचार की ओर बढ़ते हैं । कौलाचार में प्रतिष्ठित होने से ही ब्रह्मतत्व का साक्षात्कार होता है । वेदाचार में देह और मन की शुचिता का विधान करना ही प्रधान कर्तव्य है । वैष्णवाचार में भक्ति का साधन, शैवाचार में ज्ञान का साधन, दक्षिणाचार में भोग का साधन, वामाचार में त्याग का साधन । सिद्धान्ताचार में साधक भोग और त्याग के भीतर कौन श्रेय है, इसका निर्णय करते हैं । कुलाचार में साधक को ब्राह्मी स्थिति का लाभ होता है । 'कुल' शब्द का अर्थ ही 'ब्रह्म' है ।

पहले तीन आचार अर्थात्, वेद, वैष्णव और शैव आचार पशु भाव के साधक के लिए निश्चित किये गये हैं । दक्षिण और वाम आचार वीर भाव के साधक के लिए हैं । सिद्धान्त और कौल-आचार दिव्य भाव के साधक के लिए हैं । कई विद्वानों के अनुसार केवल कौलाचार ही दिव्य भाव के साधक के लिए विहित है । पहले पाँच आचारों की साधना में साधक अवश्य ही गुरु के निर्देशानुसार चलेंगे यही तन्त्र-शास्त्र का निर्देश है ।

कुंडलिनी शक्ति और षट्चक्र भेद

तन्त्र मत के अनुसार शिव-शक्तिमय परबिंदु या शब्दब्रह्म चर और अचर समूची विश्वसृष्टि में चैतन्यसत्ता के रूप में परिव्याप्त है । सृष्टि में हर जीव और हर वस्तु इसीलिए चैतन्यमय है । हम लोग साधारणत: जिन पदार्थों को जड़ नाम से पुकारते हैं, वे भी चैतन्य-युक्त हैं । पत्थर के टुकड़े पर, लकड़ी के टुकड़े पर तथा रेत (बालू) के कण में चैतन्य अनभिव्यक्त रूप में वर्तमान है । यहाँ चैतन्य सुप्त होकर वर्तमान है, इसलिए उनको हम लोग 'जड़' कहते हैं । वृक्ष-लता में यही चैतन्य थोड़ी मात्रा में अभिव्यक्त है—मनुष्य के भीतर भी चैतन्य सत्ता अभिव्यक्त अवस्था में जितनी वर्तमान है—अनभिव्यक्त अवस्था में उससे बहुत गुणा ज्यादा है । एक ही वाक्य में यह कहा जा सकता है कि किन्हीं वस्तुओं के और किन्हीं प्राणियों के भीतर ही चित्शक्ति कुछ अभिव्यक्त अवस्था में वर्तमान है । हर वस्तु के परमाणु में, हर देह कोश में, चित्शक्ति इसी तरह आनुपातिक भाव में गतिशील तथा स्थिर होकर रहा करती है । स्थूल हो या सूक्ष्म, कार्य हो या कारण—सभी जगह चित्शक्ति की यह गतिशीलता और स्थिरता विद्यमान है । मनुष्य के देह में इसी निश्चल या सुप्त चैतन्य को कुंडलिनी शक्ति के नाम से अभिहित किया जाता है। कुंडलिनी शक्ति मूलाधार में साँप-जैसी कुंडलाकृति होकर विराजमान है । यही मनुष्य की शक्ति का भंडार है, और देह की, प्राण की और मन की सभी प्रकार की प्रेरणा शक्ति का मुख्य स्रोत है । इसी कुंडलिनी शक्ति को जगाने से मनुष्य उच्च कोटि की सत्ता में पहुँच सकता है, यही निश्चल कुंडलिनी शक्ति और

गतिशील शक्ति अनेकों प्रकार के मनुष्यों के भीतर भिन्न-भिन्न अनुपात में वर्तमान है। इसी अनुपात के भेद के अनुसार कोई महान् बनता है, कोई छोटा बनता है, अतः किसी मनुष्य के देह की, प्राण की या मन की कर्मशक्ति को बदलने के लिए उसी अनुपात का परिवर्तन आवश्यक है। अर्थात् गतिशील और निश्चल शक्ति का पुनर्वितरण आवश्यक है। एक परमाणु या एक दह्-कोष की शक्ति का परिवर्तन भी इस तरह होता है। रेडियो सक्रियता के (Radio Activity) के क्षेत्र में देखा जाता है कि निउक्लियास (Nucleous) में संवहन शक्ति और अवर्तमान इलेक्ट्रोन की शक्ति के अनुपात के खास प्रकार के पुनर्वितरण के कारण एक प्रकार का परमाणु दूसरे प्रकार के परमाणु में परिवर्तित होता है।

प्रायः ही सभी प्रकार की भारतीय अध्यात्म-साधना में कुंडलिनी शक्ति के जागृत करने का उल्लेख होता है। तन्त्र-साधना में तो कुंडलिनी योग और कुंडलिनी शक्ति का एक विशेष स्थान है। जिस प्रक्रिया द्वारा सुप्त कुंडलिनी शक्ति की जागृति होती है यानि कुंडलिनी शक्ति, जो सर्पाकार होती है और जिसका मुंह नीचे की ओर होता है, जब वह ऊर्ध्ववर्ती हो ऊपर की ओर जाने लगती है तो उसे कुंडलिनी योग कहते हैं।

कुंडलिनी अनंत शक्ति का आधार है। 'अनंत' शब्द के बारे में अगर हम थोड़ा विश्लेषण करें तो हमें और महत्वपूर्ण बातें ज्ञात होंगी। अनंत कभी भी किसी भी हालत में क्षुद्र या लघु नहीं होता और न ही यह 'शांत' होता है। इसका अन्त या विनाश भी नहीं होता। करोड़ों ब्रह्माण्ड में असंख्यों वस्तु-राशियों की सृष्टि करने के बाद भी सर्वशक्तिमान की शक्ति अनंत ही रह जाती है। अनंत से अनंत राशि का खर्च होने के बाद भी अनंत ही शेष रह जाता है। इसलिए उपनिषद् में कहा गया है:

'पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्ण मेवावशिष्यते।'

हम लोगों की धारणा के भीतर ही इसका उदाहरण मिलता है। एक बरगद के फल में अनगिनत छोटे-छोटे बीज होते हैं, इसके प्रत्येक बीज से बहुत बड़ा बरगद का पेड़ पैदा हो सकता है। उसी पेड़ में और जो करोड़ों फल लगेंगे, उनसे और भी कितने अनगिनत बीज होंगे। इसी तरह प्रत्येक बीज के भीतर भी असंख्यों बीज पैदा करने की शक्ति छिपी होगी। अर्थात् प्रत्येक बीज के भीतर ही अनंत शक्ति छिपी हुई है।

बरगद के बीज की तरह प्रत्येक परमाणु के भीतर भी अनन्त शक्ति सोयी हुई है। परमेश्वर की शक्ति परमाणु-परमाणु में विभक्त होकर भी अनन्त ही रह गई है। इसी शक्ति को जगा देने से एक अणु से ही विश्व की सृष्टि या नाश संभव है। अणु-बम की शक्ति प्रमाणित होने के बाद इस विषय में और किसी प्रकार का संदेह नहीं है।

अनन्त शक्ति सक्रिय होकर अनन्त कार्य का अंत करने के बाद भी अनन्त ही रह जाती है। ब्रह्माण्ड की सृष्टि के बाद जो अनन्त शक्ति उद्धत रहती है वह आणविक रूप ग्रहण करने के समय कुंडलाकृति होकर घूमने लगती है, इसीलिए इसकी उपमा कुंडलाकृति साँप के साथ की गई है। पिंड शरीर की सृष्टि के बाद उद्धत शक्ति मूलाधार में जड़ अवस्था में रहा करती है, इसी को कुंडलिनी शक्ति कहा गया है। शरीर को धारण करने के लिए यह शक्ति अत्यन्त आवश्यक है। इसीलिए उसे आधार-शक्ति भी कहते हैं। जड़-रूप में रहने पर भी असल में यह चिद् वस्तु है। यह शक्ति जाग्रत होकर सुषुम्ना की राह होकर सहस्रार की ओर अग्रसर होती है, और षट्चक्र की क्रियाओं का वर्णन तांत्रिक योगियों ने भिन्न-भिन्न रूप में किया है। इसके पीछे शरीर का जो वैज्ञानिक आधार है, उसी को लेकर आगे हम आलोचना में प्रवृत्त होंगे।

तन्त्र में मनुष्य के स्नायु-जाल को 'नाड़ी' नाम से पुकारते

हैं। तन्त्र के अनुसार मनुष्य के शरीर में साढ़े-तीन करोड़ नाड़ियाँ हैं। इसके भीतर तीन अधिक महत्त्वपूर्ण नाड़ियाँ हैं। ये हैं—इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना। सुषुम्ना एक अति सूक्ष्म डोरी-जैसी प्रकाशपूर्ण (ज्योतिर्मय) स्नायुपथ है, यह रीढ़ के भीतर होती है। उसकी बायीं ओर इड़ा और दाहिनी ओर पिंगला नामक स्नायवीय शक्ति-प्रवाह अवस्थित है। सुषुम्ना नाड़ी के अति सूक्ष्म तंतु कटि देश के स्नायुजाल के पास आकर समाप्त हो जाते हैं। नीचे की ओर उस नाड़ी का मुँह बन्द है। मस्तिष्क की एक कंदरा में जाकर सुषुम्ना तंतु की समाप्ति हुई है। कुछ योगी कहते हैं कि सुषुम्ना की दो शाखाएँ दो पद्मों के भीतर हैं जो कि नीचे को पद्म कुंडलिनी के त्रिकोण को घेर कर अवस्थित हैं।

मूलाधार से सहस्रार तक सुषुम्ना के भीतर स्नायुजाल के पाँच विशेष केन्द्रों को योगी लोगों ने पद्म के रूप में कल्पित किया है। पारिभाषिक रूप में इन्हें ही चक्र कहते हैं। नीचे की ओर से क्रमशः ऊपर की ओर चक्रों के नाम और उनकी स्थिति इस प्रकार से निश्चित की गई है—

१. नाभि के नीचे स्वाधिष्ठान चक्र।

२. नाभि देश में मणिपुर चक्र।

३. सीने में अनाहत चक्र।

४. कंठ में विशुद्ध चक्र, और

५. भौंहों के बीच आज्ञा चक्र।

स्नायुतंतु की सहायता से हम लोगों के शरीर के सभी प्रकार के संवेदन मस्तिष्क से प्रेरित होते हैं, और फिर मस्तिष्क द्वारा निर्देशित किये जाने पर ही बाहर की क्रिया प्रेरित होती है।

इन्हीं ज्ञानात्मक और क्रियात्मक स्नायु-तंतुओं को योगी लोग इड़ा और पिंगला के नाम से पुकारते हैं। इन्हीं दो नाड़ियों के द्वारा भीतरी और बाहरी दोनों ओर शक्ति का प्रवाह आया-

जाया करता है। योगी लोगों का कहना है कि इस नाड़ी जाल की बिना सहायता लिए ही अगर सुषुम्ना के भीतर स्नायविक शक्ति-प्रवाह को जारी रखा जाय तो इस शरीर के बंधन से मुक्ति मिलती है, साथ ही सभी प्रकार के ज्ञान मनुष्य को प्राप्त हो जाते हैं।

जैसा कि हम आगे उल्लेख कर चुके हैं कि सुषुम्ना का मुँह नीचे की ओर बन्द होता है। साधारण मनुष्य के शरीर में सुषुम्ना के रास्ते में कोई स्नायवीय क्रिया ही नहीं होती है, अतः साधारण मनुष्य की सुप्त शक्ति को जागृत करने के लिए सबसे पहले तो यह आवश्यक है कि सुषुम्ना का मुँह खोला जाय और फिर स्नायु-प्रवाह चलाने के लिए कुंडलिनी शक्ति जगाना आवश्यक है। कुंडलिनी शक्ति को जगाकर अगर सुषुम्ना नाड़ी को भीतर से क्रियाशील किया जाय तो वह स्नायुकेन्द्र या चक्रों के ऊपर क्रिया करेगी। क्रिया के फलस्वरूप प्रतिक्रिया होगी और फिर उस प्रतिक्रिया से ही अतीन्द्रिय अनुभूति का जन्म होगा। कुंड-लिनी शक्ति ज्यों-ज्यों एक-एक केन्द्र को पार करती जायगी, त्यों-त्यों मन का एक-एक स्तर उन्मुक्त होता जायगा। ऐसा होने से अपने-आप साधक को जगत् के सूक्ष्म अतीन्द्रिय कारण और कार्य के सम्बन्ध में पूर्ण ज्ञान होता जाएगा। यही शक्ति जब मस्तिष्क में जा पहुँचती है, तब अधिक अनुभूति-प्रवण होने से उस केन्द्र की प्रतिक्रिया से ज्ञान का पूर्ण प्रकाश या आत्मानुभूति होती है।

अब हम कुंडलिनी शक्ति के जागरण के बारे में तंत्र के अनु-सार क्या सिद्धान्त है इसकी आलोचना करेंगे।

भगवत्-शक्ति से सृष्टि, स्थिति, संहार, निग्रह, और अनुग्रह इन पाँच कार्यों का संघटन होता है। इनमें सृष्टि, स्थिति और संहार तो प्रसिद्ध हैं।

निग्रह का दूसरा नाम 'तिरोधान' है—'एकमेवाद्वितीयं पर-ब्रह्म'। शिवलीला में प्रवृत्त होकर अपने स्वातंत्र्य के प्रभाव से अपने

पूर्णत्व को आवृत्त करके अपूर्ण रूप में आत्मा का प्रकाश करते हैं। पूर्ण ब्रह्म अपने को छोटा करके (संकोचन करके) अणुरूप में प्रकाशित करता है। यह चिद् ही वासना, 'मैं करता हूं'—ऐसा अभिमान (कर्त्तृत्वाभिमान) आदि आवरण से आवृत्त होकर मायिक देह का रूप लेता है। इसा तरह शिव अपनी शक्ति को सीमित करके जीव रूप ग्रहण करते हैं। इसी का नाम निग्रह है। जीव और जीव की उत्पत्ति के कारण शिव स्वरूपतः अभिन्न होने से भी दोनों के भीतर भेद का ज्ञान मिलता है। इसका प्रधान कारण यह है कि अणु मलयुक्त है। मल ने ही जीव के स्वरूप को आवृत्त करके अनादिकाल से अणुरूप में रख दिया है, यही मल फिर समय के प्रभाव से परिपक्व होने लगता है। जिस अणु का मल जितना ही परिपक्व होता है वह उतनी ही अधिक मात्रा में चैतन्य लाभ करने के लिए व्यग्र होता है। इस प्रकार अणुरूपी जीवन का मल परिपक्व होने से परमेश्वर की कृपा उसको आत्म-ज्ञान प्रदान करती है। जीव तब आत्म-स्वरूप की उपलब्धि करके शिवत्व में प्रतिष्ठित होता है। परमेश्वर की इस कृपा को ही अनुग्रह कहा जाता है। शिव के 'निग्रह' से जीव के संसार का आरम्भ होता है और शिव 'अनुग्रह' से जीव का संसार निवृत्त होता है।

उन जीवों का जिनका मल परिपक्व हो गया है—ऐसे जीवों के ऊपर परमेश्वर की जो अनुग्रह-शक्ति होती है उसे ही तांत्रिक भाषा में 'शक्तिपात' कहते हैं। यही अनुग्रह कभी निराधार शक्ति-रूप में क्रिया करता है फिर सद्गुरु के देह-रूप आधार के माध्यम से आत्म-प्रकाश करता है। इस अनुग्रह-शक्ति के प्रभाव से अणु-रूपी जीव के भीतर सुप्त शिवमयी शक्ति जाग उठती है। इसी का नाम कुंडलिनी शक्ति का जागरण है। कुंडलिनी शक्ति की जागृति के कारण सुषुम्ना का मुंह खुल जाता है तब इड़ा और पिंगला में प्रवहमान स्नायु-प्रवाह सूक्ष्मता प्राप्त कर सुषुम्ना-मार्ग में प्रवेश करता है, तब जीव का जीव-भाव क्रमशः

नष्ट हो जाता है और शिव भाव का उदय होता है। षट्चक्र भेद का असली महत्व ही यह है कि इससे जीव-भाव की निवृत्ति और शिव-भाव की प्रतिष्ठा होती है।

अनेक वैज्ञानिक आविष्कारों को केन्द्रित करके बार-बार पृथ्वी पर आलोड़न संघटित हुआ है। यह सत्य है कि इन वैज्ञानिक आविष्कारों द्वारा मनुष्य को अनेक शक्तियां मिली हैं, लेकिन इन भौतिक-वैज्ञानिक आविष्कारों में से किसी को भी मनुष्य को सर्वशक्तिमान बनाने की शक्ति नहीं थी। कुंडलिनी योग भारतीय अध्यात्म-साधना का एक आश्चर्यजनक वैज्ञानिक आविष्कार है। कुंडलिनी योग के द्वारा मनुष्य सर्वशक्तिमान बन सकता है और सर्वज्ञत्व लाभ कर सकता है। कुंडलिनी शक्ति जैसे वैज्ञानिक आविष्कार को केन्द्र करके समूची पृथ्वी के बुद्धिजीवी मनुष्यों के भीतर अब तक आलोड़न क्यों नहीं जाग उठा है—यह समझना मुश्किल है।

दीक्षा : गुरु-शिष्य प्रसंग

किसी योग्य गुरु से दीक्षा-ग्रहण किये बिना तान्त्रिक उपासना में किसी का अधिकार नहीं होता। 'शारदा तिलक' में दीक्षा के स्वरूप के बारे में कहा गया है :—

दिव्य ज्ञानं यतो दद्यात् कुर्यात पापस्य संक्षयः।
तस्मात् दीक्षेति संप्रोक्ता देशिकैस्तंत्र वेदिभिः॥

'प्रयोग सार' में कहा गया है :—

दीयते ज्ञान सद्भावः क्षीयते पाप संचयः।

तेन दीक्षेति सा ज्ञेया पाशच्छेदाह्वया क्रिया ।।

तन्त्र-पारंगत योगियों का कहना है कि दीक्षा से साधक में दिव्यता आती है और उसके पापों का नाश हो जाता है । तीनों प्रकार के मल का नाश करके तांत्रिक-दीक्षा मनुष्य को मुक्ति की राह पर ले जाती है । मायिक, बुद्धिगत और आणव ये तीन प्रकार के मल हैं । अज्ञान का मूल कारण बुद्धिगत मल है । शिव-शक्ति के अनैक्य बोध की जड़ आणव मल है ।

तांत्रिक विधि द्वारा दी जाने वाली दीक्षा के नामानुसार अनेक भेद हैं जिन्हें 'अभिषेक' कहते हैं । शिष्य के आध्यात्मिक जीवन में उसकी विकास की अवस्थाओं के अनुसार आठ भेद हैं—

१. शाक्ताभिषेक	२. पूर्णाभिषेक
३. क्रमदीक्षाभिषेक	४. साम्राज्याभिषेक
५. महासाम्राज्याभिषेक	६. योगदीक्षाभिषेक
७. पूर्णदीक्षाभिषेक	८. महापूर्णदीक्षाभिषेक

शिष्य को साधन-मार्ग पर प्रवृत्त करने के लिए और उसके भीतर शक्ति का संचार करने के लिए सबसे पहले शाक्ताभिषेक है । पुरश्चरण आदि से साधन की योग्यता प्राप्त करने के बाद और पूर्णाभिषेक होने पर शिष्य की साधना का उच्च क्रम प्रारम्भ होता है । इसके बाद की साधना के द्वारा तरह-तरह के कठोर स्तर को पार करते हुए शिष्य का क्रमदीक्षाभिषेक, साम्राज्या-भिषेक और महासाम्राज्याभिषेक होता है । इसके बाद तो और भी कठिन साधना का प्रारम्भ होता है, और फिर क्रमशः योग-दीक्षाभिषेक, पूर्णदीक्षाभिषेक और महापूर्णदीक्षाभिषेक दी जाती है ।

इस अन्तिम अभिषेक से शिष्य का आध्यात्मिक जीवन परि-पूर्णता प्राप्त करता है, फिर वे 'सोऽहं' तत्व को प्राप्त करके जीवन-मुक्त हो जाते हैं—इसी अवस्था को परमहंस पद की प्राप्ति

होना भी कहते हैं । श्री रामकृष्ण परमहंस इसी कोटि के साधक थे ।

तांत्रिक साधना करने के लिए अभिषिक्त होना आवश्यक है । अभिषेक न होने पर चक्र की साधना या पूजा करने का अधिकार नहीं प्राप्त होता ।

'निरुक्त तन्त्र' में कहा गया है :—

अभिषिक्तो भवद्वीसे अभिषिक्ता च कौलिकी ।
स्वयं च वीर शक्ति च वीर चक्रे नियोजयेत ।।
नाभिषिक्तो वसेच्चक्रे नाभिशिक्ता च कौलिकी ।
वसेच्च रौरवं याति सत्यं सत्यं न संशयः ।।

नियम के अनुसार दीक्षित होने पर तथा गुरु के उपदेश, संकेत और तांत्रिक परिभाषा को समझकर जो सब प्रकार से तान्त्रिक-कार्य करने में समर्थ हैं उन्हें पूर्णाभिषिक्त कहा गया है ।

'महानिर्वाणतन्त्र' में पूर्णाभिषेक की क्रिया और अनुष्ठान आदि का विस्तृत विवरण है । इस तरह के पूर्णाभिषिक्त साधक जब आचार्य-पद पर अभिषिक्त होते हैं, तब उस क्रिया और विधान को पट्टाभिषेक कहते हैं ।

कुछ तान्त्रिक आचार्यों का मत है कि दीक्षा तीन प्रकार की होती है—जैसे शांभवी, शाक्ति और मान्त्री । 'वायवीय संहिता' में कहा गया है :—

शांभवी चैव शाक्ति च मान्त्री चैव शिवागमे ।
दीक्षोपदिश्यते त्रेधा शिवेन परमात्मना ।।

सद्गुरु के दर्शन, स्पर्शन और केवल संभाषण से ही जब शिष्य का अन्तःकरण शुद्ध हो जाता है तो उसे शांभवी दीक्षा कहते हैं :—

गुरोरालोक मंत्रेण—स्पर्शाद् संभाषणादपि ।
सद्यः संज्ञा भवेज्जन्तो दीक्षा सा शांभवी मता ।।
(वायवीय संहिता)

गुरु जब शिष्य के देह पर अपनी प्राण-शक्ति का संचार करते हैं और शिष्य को अध्यात्म-शक्ति द्वारा प्रेरित करते हैं—उसे शक्ति दीक्षा कहते हैं—

शाक्ती ज्ञानवती दीक्षा शिष्यं देह प्रविश्यतु ।
गुरुणा योग मार्गेण क्रियते ज्ञान चक्षुषा ॥
(वायवीय संहिता)

मान्त्री दीक्षा से मन्त्र-शक्ति की जागृति होती है और शिष्य को अपने इष्ट देवता का साक्षात्कार मिलता है ।

मंत्र मार्गानुसारेण साक्षात् कृत्वेष्टदेवताम् ।
गुरुश्चोद्बोधयेच्छिष्यं मंत्र दीक्षेति सोच्यते ॥
(प्रयोग सार)

कौन मंत्र किस शिष्य के अनुकूल है गुरु इसका निश्चय और निर्धारण करते हैं । तन्त्र-शास्त्र के अनुसार स्त्री-जाति से दीक्षा बहुत फलप्रद है, जननी से दीक्षा ग्रहण करने से, उसे आठ गुणा अधिक फल की प्राप्ति होती है ।

सद्गुरु शिष्य के कुशल के लिए हमेशा जागरूक होते हैं । शिष्य की योग्यता विशेष रूप से निर्धारित करके उसके अनुसार वे दीक्षा प्रदान करते हैं । साधारणत: जो दीक्षा दी जाती है उसे 'क्रिया दीक्षा' कहते हैं । अनेक प्रकार की क्रियाओं और अनुष्ठान के द्वारा इस दीक्षा की पूर्ति होती है ।

अधिक योग्यता वाले शिष्य को 'वेध दीक्षा' दी जाती है। यह दीक्षा थोड़े ही समय में होती है और फल प्रदान करने वाली होती है । इस दीक्षा को ग्रहण करने के साथ-साथ शिष्य मन्त्र और देवता के साथ एकात्मता का अनुभव करते हैं । वे साक्षात् सच्चिदानन्द शिव-स्वरूप हो जाते हैं । बहुत थोड़े साधकों को ही, अगले जन्म के संचित संस्कारों के कारण वेध दीक्षा का अधिकार प्राप्त हो जाता है । दूसरे प्रकार की दीक्षा में क्रमानुसार उन्हें जो अनुभूति प्राप्त होती है । वेध दीक्षा में पल-भर में उनसे साक्षा-

त्कार हो जाता है ।

दीक्षा सद्गुरु से ग्रहण करनी चाहिए और वह फलप्रद होती है । इसीलिए तंत्र-शास्त्रों में गुरुतत्त्व का विशेष रूप से उल्लेख किया गया है । गुरु के माध्यम से ही ईश्वरी शक्ति शिष्य के भीतर प्रकाशित होती है । ईश्वरी शक्ति ही इस पृथ्वी पर गुरु का रूप लेकर अवतरित हुई है । उन्हें सामान्य मनुष्यों की श्रेणी में रखना उचित नहीं है । 'कामाख्या तंत्र' में कहा गया है :—

अतएव गुरु नव मनुजः किन्तु कल्पना ।
दीक्षार्थं साधकानां च वृक्षादौ पूजनं यथा ॥

'शारदा तिलक' के द्वितीय पटल में सद्गुरु का उल्लेख इन शब्दों में किया गया है :—

मातृतः पितृतः शुद्धः शुद्धभावो जितेन्द्रियः ।
सर्वागमानां सारज्ञः सर्वं शास्त्रार्थं तत्ववित् ॥
परोपकार निरतो जपपूजादि तत्परः ।
अमोघ वचनः शान्तो वेद वेदार्थं पारगः ॥
योग मार्गानुसन्धायी देवता हृदयंगमः ।
इत्यादि गुण सम्पन्नो गुरुरागमसम्मतः ॥

उद्धृत अंश से यह साफ हो जाता है कि सद्गुरु में कौन-कौन से गुण होने चाहिए । सद्गुरु की कृपा न पाने से तान्त्रिक-साधना में सफलता और आगे बढ़ने का और कोई उपाय नहीं है । सद्गुरु की कृपा-दृष्टि पाने के लिए शिष्य और साधक के भीतर कौन-कौन सी योग्यता होनी चाहिए । इसके बारे में भी 'शारदा तिलक' के द्वितीय पटल में उल्लेख है :—

शिष्यः कुलीनः शुद्धात्मा पुरुषार्थ परायणः ।
अधीतवेदः कुशलो दूर मुक्तो मनोभवः ॥
हितैषी प्राणिनां नित्य मास्तिकस्त्यक्त नास्तिकः ।
स्वधर्मनिरतो भक्त्या पितृ-मातृ हितोद्यतः ॥
वाङ्मनः कायवसुभिर्गुरु शुश्रूषणे रतः ।

त्यक्तोऽभिमानो गुरुषु जातिविद्या धनादिभिः ॥
मन्त्र पूजा रहस्यानि यो गोपयति सर्वदा ।
त्रिकालं यो नमस्कुर्यादागमाचार तत्ववित् ।
एतादृशे गुणोपेतः शिष्यो भवति नापरः ॥

काल के प्रभाव से अर्थात् अनेक जन्मों में किये गये अच्छे कर्मों के कारण जीव के आत्म-चैतन्य पर जो आवरण-रूपी मल है वह परिपक्व होता है। जीव के मल परिपक्व होने से उसकी मुक्ति के लिए ईश्वर की अनुग्रह-शक्ति गुरु के रूप में अवतरित होती है। इसलिए शक्तिपात न होने से न तो सद्गुरु का आगमन होता है और न दीक्षा होती है। दीक्षा के भेद शक्तिपात के तारतम्य के ऊपर निर्भर है। वेध इत्यादि की दीक्षा जो शीघ्र ही मुक्ति प्रदान करने वाली होती है—तीव्रतम शक्तिपात के कारण ही संभव होती है। साधारण मात्रा में शक्तिपात के कारण जिस दीक्षा का लाभ होता है उसका नाम समय दीक्षा है। इस दीक्षा को ग्रहण करने पर समय धर्म का पालन करना पड़ता है। इसके प्रभाव से ईश्वर पर श्रद्धा और इष्ट देवता पर भक्ति पैदा होती है।

इसी दीक्षा के द्वारा शिष्य गुरु-शुश्रूषा का अधिकार-लाभ करके धन्य होता है और देवता के अर्चन व पूजन की योग्यता प्राप्त करता है। असाधारण शक्तिपात के कारण शिष्य को निर्वाण दीक्षा मिलती है। इसी दीक्षा के फलस्वरूप जीव को शिवत्व लाभ होता है, इसी दीक्षा के द्वारा पूर्ण ज्ञान की साधना का प्रारम्भ होता है, और साधक के भीतर पूर्ण भगवद् धर्म की अभिव्यक्ति होती है। साधक तब सर्वज्ञ और सर्वशक्तिमान बन जाता है।

तान्त्रिक साधना भोग और मोक्ष दोनों ही प्रदान करने वाली है। भोगार्थी और मोक्षार्थी इन दोनों के लिए ही दीक्षा का प्रबन्ध है। दीक्षा के कारण भोगार्थी भोग देने वाली सिद्धियाँ

प्राप्त करते हैं, मोक्षार्थी दीक्षा के द्वारा कैवल्य मुक्ति की प्राप्ति करते हैं।

सबीज और निर्बीज भेद से मोक्षार्थी की दीक्षा दो प्रकार की है। शास्त्र-विचार में अक्षम, मूर्ख स्त्री आदि के लिए और शारीरिक शक्ति-शून्य, वृद्ध, बीमार आदि के लिए निर्बीज दीक्षा का विधान है। शास्त्र-विचार आदि करने में योग्य और विद्वान् और व्रत इत्यादि के क्लेशों को सहन करने की शक्ति रखने वाले साधकों के लिए सबीज दीक्षा का विधान है।

मन्त्र-तत्व

तन्त्र-शास्त्र में मन्त्र का महत्त्व बहुत ही गुरुत्वपूर्ण है। तन्त्र-शास्त्र में यन्त्र, मन्त्र और देवता को बराबर महत्व देकर उल्लेख किया गया है। 'कौलावली तन्त्र' में कहा गया है—'यंत्र मन्त्रमयं प्रोक्तं मन्त्रात्मा देवतैवहि'।

मन्त्र शब्द का व्युत्पत्तिगत अर्थ निर्णय करके 'पिंगला तन्त्र' में कहा गया है —

मननं विश्वविज्ञानं त्राणं संसार बन्धनात् ।
यतः करोति संसिद्धो मन्त्र इत्युच्यते ततः ॥

मन्त्र शब्दात्मक है। मन्त्र-शक्ति की विशेष जानकारी के लिए यह आवश्यक है कि 'हम तन्त्र के अनुसार शब्दों का क्या महत्त्व है, इसको जानें।' मंत्र-शास्त्र के विद्वानों ने सृष्टि की उत्पत्ति शब्द से ही मानी है और वे शब्द को अनादि शब्द-ब्रह्म कहते हैं।

तन्त्र-मत के अनुसार समूचा विश्व शब्द से उत्पन्न और शब्द

के भीतर ही विवृत है। शब्द-राज्य को भेद करने से ही शब्दातीत परब्रह्म का साक्षात्कार होता है।

शब्दात्मक जगत्-सृष्टि के बाहर जाने के लिए शब्द को ही आधार के रूप में ग्रहण करना होगा। तंत्र में शब्द को वैखरी, मध्यमा, पश्यन्ती और परा इन चार भागों में बाँटा गया है। वैखरी शब्द सबसे नीचे स्तर का शब्द है। वैखरी शब्द से क्रमशः मध्यमा और पश्यन्ती होकर परा शब्द तक साधक को उठाना पड़ेगा। अंत में परा को भी अतिक्रम करके शब्दातीत ब्रह्म में पहुंचना संभव होगा।

'अ' से 'ह' तक सब वर्ण-विमर्श शक्ति के रूप में पूर्ण प्रकाश-रूप परमेश्वर के साथ अभिन्न रूप में नित्य विराजमान हैं। वर्ण तब एक ओर अभिन्न रूप में ही वर्तमान रहता है। आत्मा या परमेश्वर लीला के कारण सृष्टिकार्य में उन्मुख होने से उनकी स्वरूपभूता विमर्श-शक्ति के अंश के रूप में अकारादि वर्ण-विमर्श रूप में आत्मा से अभिन्न होकर भी जगत्-सृष्टि के बाद अज्ञान-अवस्था में आत्मा से भिन्न है, ऐसा प्रतीत होता है। इस अवस्था में उन्हें 'कला' या 'अंश' कहते हैं। इन्हें मातृका शक्ति के नाम से भी पुकारते हैं। कला या 'मातृका' से उत्पन्न पदवाक्यादि रूप अनगिनत छोटी शक्ति के प्रभाव से ही चिद्गुण जीव-रूप में आविर्भूत होते हैं। और इन्हीं के प्रभाव से चिद्गुण जीव-रूप में आविर्भूत होते हैं फिर इसके परिणामस्वरूप काम-क्रोध आदि के वश में होकर इस शरीर में रहने वाला आत्मा भाव-रूपी बंधन से बंधता है। चित्शक्ति के स्फुरण के अभाव के कारण साधारण मनुष्य वैखरी भूमि में आबद्ध रहता है।

मध्यमा वाक् मंत्र-रूपा, मध्यमा भूमि में प्रवेश करने से ही ज्ञान का द्वार क्रमशः खुलने लगता है। मनुष्य के कंठ से जो वैखरी वाक्य का उच्चारण होता है, उसके मूल में मनोगत भाव या अर्थ छिपा होता है, शब्द और अर्थ के सम्पर्क के नित्यत्व के

विद्वानों का जो सिद्धान्त है, उसका निर्णय केवल वैखरी वाक्य से स्व पर ही लागू होता है। वैखरी भूमि में वाक्य के साथ चित्शक्ति का सम्पर्क छिपा रहता है। मध्यमा भूमि में नाट्यमय चिद्-रश्मि हमेशा उपस्थित रहता है। मंत्र चिद्-रश्मि से पूर्ण है।

इस विषय में महामहोपाध्याय डॉ० गोपीनाथ कविराज ने अपने 'जप-साधना' नामक प्रबन्ध में कहा है—'जिस उपाय से भी हो वैखरी से मध्यमा भूमि में उत्थान ऐकांतिक रूप से आवश्यक है। इस उत्थान के व्यापार में एक ओर गुरु-शक्ति तथा दूसरी ओर स्वकीय प्रयत्न अपरिहार्य है। मध्यमा शब्द का अर्थ दो प्रान्तों में मध्यवर्ती से है—एक प्रान्त में दिव्यंपश्यन्ती वाक् तथा अपर प्रांत में पार्श्व वैखरी वाक् इन दोनों के बीच संयोजक सेतु-स्वरूप मध्यमा वाक् क्रियाशील है। इसीलिए पशु-भाव से दिव्य भाव में आने के लिए मध्यपथ रूपी सेतु का अवलंबन लेना आवश्यक है। वैखरी वाक् जिस प्रकार व्यक्त है मध्यमा को उस प्रकार व्यक्त नहीं कहा जा सकता, किन्तु व्यक्तता मध्यमा में है, साथ-साथ अव्यक्तता भी है इसलिए मध्यवर्ती होने से मध्यमा को व्यक्त तथा अव्यक्त उभयात्मक कहा गया है—मध्यमा के उस पार पश्यन्ती अथवा दिव्य वाक् है, यह एक प्रकार से अव्यक्त है।

इस वाक् से निखिल देवता निश्चय प्रकाशित होते हैं। केवल देवता का प्रकाश ही पश्यन्ती वाक् का कार्य नहीं—विष्णु का परम पद भी पश्यन्ती भूमि से ही दृष्टिगोचर होता है। ऋषिगण जिस परम पद का निरन्तर दर्शन करते हैं, वह इस भूमि से ही जानना चाहिए। वस्तुतः पश्यन्ती वाक् में ही कारणस्थ चैतन्य स्फूर्ति होती है—यही देवता का स्वरूप है। प्राचीनकाल में मंत्र-साक्षात्कार के फलस्वरूप जो ऋषित्व लाभ होता था, वह इस पश्यन्ती भूमि के लाभ का ही फल था।

एक हिसाब से देखा जाय तो पश्यन्ती के परे वाक् की ओर कोई उच्चतर अवस्था कल्पनीय नहीं, इसीलिए प्राचीन आचार्य-

णों में अनेकों ने वाक् को त्रिविध कहकर भी वर्णित किया है, तथापि परा पश्यन्ती की भी एक परावस्था है, यह स्वीकार करना होगा। यह परा वाक् चिन्मय और परम अव्यक्त है। इस भूमि में व्यष्टि देवता का प्रकाश नहीं, समष्टि देवता या ईश्वर-चैतन्य में समस्त वाक् परिसमाप्त हो जाता है। यह वाक् सृष्टि के ऊर्ध्वतम शिखर से निम्नतम भूमि-पर्य्यन्त समान रूप से व्यक्त है। रूप चैतन्य ही परावाक् का तात्पर्य है, इसी का नाम नित्य अक्षर है। इस अवस्था के परे शब्द की गति नहीं। मध्यमा वाक्—इस अक्षर ब्रह्म-पर्यन्त योगी को गति शब्द ब्रह्म के अन्तर्गत है। अक्षर-ब्रह्म भेद होते ही परब्रह्म का द्वार खुल जाता है, परब्रह्म शब्दातीत है। इसीलिए शास्त्रकारों ने कहा है—'शब्द ब्रह्मणि निष्णातः पर ब्रह्माधिगच्छति।'

गुरु से प्राप्त मन्त्र की साधना से ही शक्ति मिलती है। बिना दीक्षा प्राप्त किये अगर कोई व्यक्ति अपने मन के अनुसार किसी पुस्तक से मंत्र का उच्चारण और जप करेगा तो निश्चय ही उसे विपत्ति उठानी पड़ेगी। इसीलिए 'नारायणी तन्त्र' में कहा है—

यदृच्छया श्रुतं मंत्रं छलेनाप्यछ लेन वा।
पत्रेक्षितं वा गाथावत् नजपेद् मद्यनर्थकृत ॥

'कुलार्णव तन्त्र' में भी कहा गया है—

उपासनाशतेनापि यां विना नैव सिध्यति।
तां दीक्षामाश्रयेद् यत्नात् श्री गुरोर्मन्त्र सिद्धये ॥

प्रत्येक मंत्र शक्ति-सम्पन्न है। तथापि संस्कार-युक्त मंत्र अर्थात् मन्त्र जाग्रत शक्ति का स्वरूप है। अगर मंत्र सद्गुरु से प्रदत्त हो, तब गुरुशक्ति के प्रभाव से मंत्र का संस्कार अपने-आप ही हो जाता है।

गुरुदत्त मंत्र का साधन और उसके फल के बारे में महामहोपाध्याय डा० गोपीनाथ कविराज ने अपने 'नाम साधना और उसका फल' नामक प्रबंध में निम्नोक्त विचार प्रकट किया है—

'गुरु-प्राप्ति के पश्चात् गुरु-प्रदत्त मंत्र की साधना चलती रहती है। मन्त्र-साधना अत्यन्त गुप्त साधना है, वह गोपनीय एवं बाहर प्रकाश के योग्य नहीं है। गुरु शिष्य की योग्यता और अधिकार देखकर उसको उसके अनुरूप मंत्र प्रदान करते हैं। रोग के निर्णय के बिना जिस प्रकार ठीक-ठीक औषध का निर्वाचन नहीं किया जाता, उसी प्रकार शिष्य की आंतर और बाह्य प्रकृति की परीक्षा किए बिना उसके अनुरूप मंत्र-शक्ति की व्यवस्था नहीं की जाती। शिष्य को स्थूल, सूक्ष्म और कारण-त्रिविध देह के अध्यास से मुक्त कर उसके स्वरूप में प्रतिष्ठित करना ही गुरु का कार्य है।—मंत्र-साधना करने से क्रमशः शिष्य की भूत-सिद्धि और चित्तशुद्धि होती है। शिष्य के स्वरूप अथवा स्वभाव को जो आवरण आच्छादित किये रहता है, वह मायिक अथवा बहिरंग भाव का आवरण है। जीवन इन बहिरंग भावों (आवरणों) से आवृत रहकर अपने को भूल गया है। आत्म-विस्मृत हो गया है। मंत्र-साधना से अज्ञानजनित यह आत्म-विस्मृति मिट जाती है, तब मंत्रसिद्ध साधक का निज भाव अर्थात् स्व भाव जाग जाता है। जब तक स्व भाव नहीं जागता तब तक मंत्रमूलक बहिरंग साधना अनिवार्य है। भाव का उन्मेष होने पर जानना होगा कि मन्त्र-साधना समाप्त हुई है एवं बाह्य गुरु अथवा शास्त्र का प्रयोजन अब नहीं है—मंत्रसिद्धि के बाद भाव देह की प्राप्ति को ही मंत्रसिद्धि का सुफल जानना चाहिए।

मंत्र के बारे में श्री विष्णु तीर्थ जी ने अपनी 'सौंदर्य लहरी' की आलोचना में कहा है—"मंत्र विज्ञान एक स्वतंत्र विज्ञान है जो पुस्तकों के आधार पर नहीं जाना जा सकता। जो लोग केवल पुस्तकों को पढ़कर किसी मंत्र का अनुष्ठान करते हैं, वे उस खिलाड़ी के सदृश हानि उठा सकते हैं, जो तलवार चलाना न जानने के कारण अपना ही अंग काट लेता है। सिद्धि-प्राप्ति करने के इच्छुकों को प्रत्येक मन्त्र के उपदेश की दीक्षा किसी जानकार

दीक्षा देने वाले से मंत्र-रहस्य समझकर लेनी चाहिए, क्योंकि मंत्रों का अनुष्ठान अग्नि के साथ खेल खेलने के समान है।"

पूजा रहस्य

शास्त्र में कहा गया है—'नादेवः देव मर्चयेत्'। पूजक स्वयं देवता न हो तो देवता की पूजा उसके द्वारा संभव नहीं है। अगर शास्त्र की दृष्टि से विचार करें तो प्रचलित पूजा-पद्धति में पुष्प-चन्दन आदि के उपचारों के द्वारा साधारण पूजा तो पूजा कहने के योग्य भी नहीं है। परमेश्वर या परमशिव के साथ पूजक की ऐक्यानुभूति ही यथार्थ पूजा है। परमशिव प्रकाशस्वरूप हैं। जिस स्वरूपभूता महाशक्ति के प्रभाव से वे केवल नित्य प्रकाशयुक्त हैं, उसका नाम "विमर्श-शक्ति' है। विमर्श-शक्ति स्वयंप्रकाश परमेश्वर से सर्वथा अभिन्न रूपा है। इस विमर्श-शक्ति की पूजा ही परमेश्वर की पूजा है। इस विमर्श-शक्ति की आराधना के द्वारा पूजक जब प्रकाश विमर्शात्मक परम शिव के साथ अपने अभेदानुभव की अवस्था में आते हैं तभी असली पूजा सम्पन्न होती है। उच्च श्रेणी के साधकों ने इस प्रकार की पूजा को ही 'परा' पूजा या उत्तम पूजा के नाम से पुकारा है। माया का आवरण नष्ट न होने से परमशिव के साथ अभेदानुभव कभी संभव नहीं है। कुंडलिनी की जागृति के अतिरिक्त माया का आवरण नष्ट होने की चीज नहीं है। अतः जिन साधकों में कुंडलिनी जागृत हो चुकी है, सिर्फ उनसे ही परा पूजा या उत्तम पूजा संभव है।

साधना के पहले भाग में ही साधक इस प्रकार की उत्तम

पूजा का अधिकारी नहीं हो सकता। इसलिए ही अपेक्षाकृत निम्नकोटि के साधक की पूजा अपेक्षा निम्नकोटि की होती है। और निम्नतर कोटि के साधक की पूजा निम्नतर कोटि की होती है। इन्हीं कारणों से साधकों ने मध्यम पूजा और अधम पूजा के नाम से और दो प्रकार की पूजाओं का उल्लेख किया है। उत्तम पूजा में जो अद्वैतानुभूति संघटित होती है, मध्यम पूजा में वह न रहने से भी भेद-ज्ञान की असारता के बारे में विचार का जन्म होता है। जड़ और चैतन्य के भीतर भेद सिर्फ अज्ञान का है—ऐसा अनुभव मध्यम पूजा के द्वारा होता है। मध्यम पूजा को ही पंडित लोगों ने 'परापरा' पूजा के नाम से पुकारा है।

अधम पूजा में पूज्य और पूजक का भेद-ज्ञान पूरी मात्रा में उपस्थित रहता है। अधम पूजा को ही पंडितों ने अपरा पूजा के नाम से पुकारा है। अधम और मध्यम पूजा के द्वारा ही साधक क्रमशः उत्तम पूजा का अधिकार प्राप्त करते हैं। अगर इस दृष्टि से विचार करें तो अधम और मध्यम पूजा का भी अपना महत्व तो है ही। अगर इस दृष्टिकोण से विचार किया जाय तो वर्तमान में प्रचलित साधारण पूजा अधम पूजा से भी निम्नकोटि की पूजा है, तथापि इस प्रकार की पूजा को भी हम बिल्कुल निरर्थक नहीं समझते, क्योंकि इस प्रकार की पूजा द्वारा पूजक को उससे उच्च-कोटि की पूजा करने का अधिकार प्राप्त हो जाता है।

वासना, कर्तृत्वाभिमान और भोग-लिप्सा इन तीन आवरणों से जीव आवृत है, यही कारण है कि वह आत्मतत्व से हटकर भौतिक स्थूलत्व से आबद्ध है। वासना इत्यादि का जो आवरण है जब तक उसका नाश नहीं होगा स्थूलत्व का भी नाश न होने से कुंडलिनि नहीं जगेगी। साधारण पूजा के अंग के रूप में जो जप, प्राणायाम, भूत शुद्धि और चित्त शुद्धि का विधि-विधान है, ये सभी स्थूलत्व को नाश करने के लिए ही हैं। अतः साधारण पूजा के द्वारा स्थूलत्व का नाश होगा, स्थूलत्व का नाश होने से

कुंडलिनी जगेगी और कुंडलिनीं के जागृत होने पर साधक को उत्तम पूजा या परा पूजा का अधिकार प्राप्त होगा।

तान्त्रिक-देवता

जैसा कि इसके पूर्व उल्लेख हो चुका है कि शैव, शाक्त, वैष्णव, बौद्ध और गाणपत्य—ये पाँच तांत्रिक सम्प्रदाय क्रम के अनुसार शिव, शक्ति, विष्णु, सूर्य, और गणेश के उपासक हैं। प्रत्येक सम्प्रदाय ने अपने उपास्य देवता की विभिन्न रूपों में कल्पना की है और फिर उन्हें अलग-अलग नामों से पुकारा है। इस तरह एक-एक देवता के ही भिन्न-भिन्न अवान्तर भेद कल्पित किये गये हैं। तरह-तरह की मूर्तियों में तरह-तरह की ध्यान-मुद्राओं में, भिन्न-भिन्न पूजा की पद्धतियों में एक ही देवता की उपासना प्रचलित हुई है। प्रसिद्ध 'शारदा तिलक' तन्त्र में शिव की तरह-तरह की ध्यानमूर्तियाँ वर्णित हुई हैं। शिव, सदाशिव, ईशान, तत्पुरुष अघोर, बामदेव, सद्योजात, मृत्युजय, महेश, नीलकंठ, अर्द्धनारीश्वर, पंचानन, पशुपति, नीलग्रीव, चंडेश्वर इत्यादि जिनमें विशेष उल्लेखनीय हैं। इसके अलावा शैव-देवता बटुक भैरव, क्षेत्रपाल आदि की पूजा भी तन्त्र-ग्रन्थ में हुई है।

शाक्त सम्प्रदाय की प्रधान उपास्य देवता दश महाविद्यायें हैं। काली, तारा, षोडशी, भुवनेश्वरी, भैरवी, मातंगी, छिन्नमस्ता, धूमावती, बगलामुखी और कमला—ये दस देवताएं साधारणतया महाविद्या के नाम से प्रसिद्ध हैं। षोडशी का नामान्तर त्रिपुर सुन्दरी या श्रीविद्या भी है। इसके अतिरिक्त शाक्त लोगों की

उपास्य देवता के नाते दुर्गा, महादुर्गा अन्नपूर्णा, प्रत्यंगिरा, कामाख्यावासिनी, महिषमर्दिनी गौरी, चामुंडा, कात्यायिनी आदि के नाम और उनकी पूजा-पद्धतियाँ विभिन्न तन्त्र-ग्रन्थों में वर्णित हैं। इन सब शक्ति-रूपिणी देवताओं के बीच काली सबसे अधिक प्रसिद्ध और सर्वाधिक पूजित हैं। दक्षिणेश्वर में प्रतिष्ठित काली मूर्ति का नाम भवतारिणी है। इस काली की साधना द्वारा ही परमतापस महातांत्रिक श्री रामकृष्ण ने सिद्धि लाभ किया था। काली के विभिन्न रूपों के विस्तृत विवरण तन्त्र-साहित्य में मिलते हैं। गुह्य काली, भद्र काली, श्मशान काली, श्वेत काली, दक्षिण काली आदि नामों से तन्त्र-शास्त्र में काली की उपासना का वर्णन है। बंगाल के भिन्न-भिन्न स्थानों में अलग-अलग नामों की काली-मूर्तियाँ प्रतिष्ठित हैं—करुणामयी, कृपामयी, दयामयी, नामों से तीन काली मूर्तियाँ मुर्शिदाबाद जिले में प्रतिष्ठित हैं। कलकत्ता के बाग बाजार में सिद्धेश्वरी काली मूर्ति प्रतिष्ठित है। कलकत्ता के ही नीमतला नामक स्थान पर आनन्दमयी काली मूर्ति प्रतिष्ठित है। विमलानन्दमयी के नाम से विख्यात काली की मूर्ति हावड़ा जिले के अन्तर्गत बेलूड़ नामक स्थान पर कालिकाश्रम में प्रतिष्ठित है।

शास्त्रोक्त अन्यान्य शाक्त देवताओं में बंगाल के वीरभूम जिलान्तर्गत तारापीठ में तारा की मूर्ति प्रतिष्ठित है। इस तारा-मूर्ति की उपासना से ही प्रसिद्ध तांत्रिक वामाक्षेपा ने सिद्धि प्राप्त की थी। चौबीस परगना जिले में छत्र भोग नामक स्थान पर त्रिपुरसुन्दरी का मंदिर है। चन्दन नगर में बोराई चंडी तला पर चंडी की मूर्ति प्रतिष्ठित है। इसके अतिरिक्त और भी अनेक शाक्त देवी की पूजा बंगाल में प्रचलित है, लेकिन काली, तारा, षोडशी दुर्गा और अन्नपूर्णा की पूजा ही खास रूप से बंगाल में लोकप्रिय है।

बंगाल के बाहर भी भारत के विभिन्न राज्यों में शक्ति देव-

ताओं की मूर्तियाँ प्रतिष्ठित हैं। असम के गोआलपाड़ा जिले का महामाया मन्दिर तो सुविख्यात ही है। बिहार राज्य के गया जिले में गमेश्वरी और मंगला गौरी प्रसिद्ध हैं। पुरी में विमला, बम्बई में महालक्ष्मी और मुम्बादेवी, अहमदाबाद की भद्रा, आबू की अम्बा देवी, पंजाब की कांगड़ा देवी, विन्ध्याचल की विन्ध्य-वासिनी, हरिद्वार की मायादेवी और चंडी, कश्मीर की क्षीर भवानी, महाबलीपुरम् की महिषमर्दिनी, बनारस की अन्नपूर्णा आदि भारत-विख्यात शक्ति देवताएँ हैं। इसके अलावा भी चंडी, गायत्री, जगद्धात्री, कात्यायिनी, गणेश-जननी, सिंहवासिनी, मुक्त-केशी आदि नामों से देवी की उपासनाएं भारत के विभिन्न स्थानों में प्रचलित हैं।

एक विषय खास रूप से ध्यान देने योग्य है। अभिचार-क्रिया (मारण, मोहन, उच्चाटन, वशीकरण) के लिए केवल शाक्त-देवता की पूजा का ही विधान है।

'तन्त्रसार' ग्रन्थ के अनुसार वशीकरण, स्तम्भन, विद्वेषण, उच्चाटन और मारण-कार्य के देवता क्रम के अनुसार—वाणी, रमा ज्येष्ठा, दुर्गा और काली हैं। बंगला, छिन्नमस्ता, प्रत्यंगिरा, आदि देवताओं की पूजा भी अभिचार-क्रिया में की जाती है। वस्तुतः तांत्रिक देवताओं के अन्तर्गत शाक्त देवताओं का वैचित्र्य ही विशेष रूप से उल्लेख योग्य है।

वैष्णव देवता के नाते तन्त्र-ग्रन्थ में विष्णु, नारायण, कृष्ण, राम, वासुदेव, बाल-गोपाल, दधिबामन, नृसिंह वाराह आदि के पूजा-मंत्र, ध्यान और स्तवादि का वर्णन हुआ है।

तन्त्रोक्त सृष्टितत्त्व

तन्त्रोक्त उपासना-पद्धति दार्शनिकता से अनुप्राणित है। उपास्य और उपासक की, जीव और शिव की ऐक्यानुभूति, यही साधना का अन्तिम लक्ष्य है। यही विश्व-जगत् के सभी पदार्थ, खासकर के मानव-शरीर में दवी शक्ति के रूप में अभिव्यक्त है। जिन तांत्रिक मंत्रों को प्रारम्भ में देखने पर तो निरर्थक शब्दों का समूह मालूम होता है, वे मंत्र भी दार्शनिक अर्थ में काफी समृद्ध हैं। शब्द ही ब्रह्म है और शब्द ही देवता है ऐसा तान्त्रिकों का विचार है। तन्त्र में यंत्र, मंत्र और देवता को एक ही तत्त्व मान-कर ग्रहण किया गया है। देवी भागवत के टीकाकार नीलकंठ ने शैव, शाक्त, सौर, गणेश, वैष्णव—इन पाँच प्रधान तान्त्रिक सम्प्र-दायों की पांच अलग दार्शनिक विचार-धाराओं का उल्लेख किया है। माधवाचार्य ने अपने 'सर्व दर्शन संग्रह' में नकुलीश, पाशुपत रसेश्वर आदि कई तांत्रिक सम्प्रदाय के दर्शनों का विवरण दिया है। इस देश के प्रत्येक दर्शन ने विश्वसृष्टि के रहस्य के बारे में अपने-अपने दृष्टिकोण प्रस्तुत किये हैं। तन्त्र-शास्त्र में इसी सृष्टि-तत्त्व की उच्च दार्शनिकता की कोटि की व्याख्या की गई है। तन्त्र-मतानुसार अनादि शिव ही परब्रह्म हैं। वे एक होने से भी सगुण और निर्गुण हैं (केवल सगुण या केवल निर्गुण नहीं हैं)।

निर्गुण रूप में वे प्रकृति-रहित हैं। सगुण रूप में वे प्रकृति-युक्त अर्थात् शक्तियुक्त हैं।

'शारदा तिलक' में कहा गया है—

निर्गुणः सगुणश्चेति, शिवो ज्ञेयः सनातनः।
निर्गुणः प्रकृते रन्यः सगुणः सकलः स्मृतः॥

सच्चिदानन्द सगुण शिव में शक्ति अभिव्यक्त होती है। उसी शक्ति से नाद और भाव से पर-बिन्दु की उत्पत्ति होती है। शिव-शक्तिमय पर-बिन्दु विस्फोरण के कारण तीन भागों में विभक्त हो जाता है। इन तीन भागों के नाम बिन्दु, बीज और नाद हैं। इन्हें ही क्रमानुसार इच्छा-शक्ति, ज्ञान-शक्ति और क्रिया-शक्ति के नाम से पुकारते हैं।

'शारदा तिलक' में कहा गया है :—

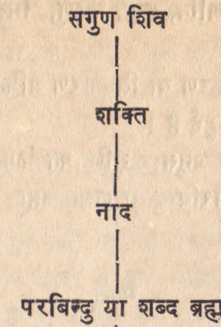
सच्चिदानन्द विभवात् सकलात् परमेश्वरात्।
आसीच्छक्तिस्ततो नादो नादाद् बिन्दु समुद्भयः।
परशक्तिक्रमः साक्षात् त्रिधासौ भिद्यते पुनः।
बिन्दु भावो बीजमिति तस्य भेदाः समीरिताः।
संज्ञानेच्छा क्रियात्मानौ वह्नीन्द्रर्कस्वरूपणः।

पर-बिन्दु के विस्फोरण से जो सर्व-व्यापक शब्द का उत्थान होता है, उसी का नाम शब्द-ब्रह्म है। यही शब्द-ब्रह्म ही पहली व्यक्त अवस्था है। शब्द-ब्रह्म ही चैतन्य-रूप में समग्र सृष्टि में विराजमान है। वर्णमाला के सभी वर्ण, शब्द और समग्र ध्वनियाँ इसी शब्द से ही उत्पन्न हुई हैं। यही शब्द-ब्रह्म ही कुंडलिनी शक्ति-रूप में प्राणी के शरीर में विराजमान है।

'शारदा तिलक' में इसका उल्लेख इस प्रकार किया गया है :—

भिद्यमानात् पराद् बिन्दोः अव्यक्तात्मा च यद् भवेत्।
शब्द ब्रह्मेति तं प्राहुः सर्वागम विशारदाः ॥
चैतन्यः सर्व भूतानां शब्द ब्रह्मेति मे मतिः।
तत् प्राप्य कुंडली रूपं प्राणिनां देहमध्यगम् ॥
वर्णात्मानाविर्भवति गद्य पद्यादि भेदतः।

इसलिए सृष्टि-प्रक्रिया का पहला विकास इस प्रकार है—



परबिन्दु या शब्द ब्रह्म

बिन्दु	बीज	नाद
(इच्छा-शक्ति)	(ज्ञान-शक्ति)	(क्रिया-शक्ति)
अग्नि	सूर्य	चन्द्र
तमोगुण	सत्त्वगुण	रजोगुण

शिव-शक्तिमय परबिन्दु या शब्द-ब्रह्म से महत् तत्त्व की उत्पत्ति हुई है। यही महत् तत्त्व, रज और तमोगुण से युक्त है, फिर मन, बुद्धि अहंकार और चित् इन चार अन्तःकरण चतुष्टय से युक्त होने के कारण इसी महत् तत्त्व से अहंकार की उत्पत्ति हुई है। अहंकार त्रिविध है—वैकारिक, तैजस और भूतादि।

वैकारिक या सात्त्विक अहंकार से दस इन्द्रियाँ-अधिष्ठातृ देवता की उत्पत्ति हुई है। तैजस या राजसिक अहंकार से पांच कर्मेन्द्रिय और पांच ज्ञानेन्द्रियों[1] की उत्पत्ति हुई है। भूतादि या तामसिक अहंकार से पंचतन्यस्त[2] व पंचभूत[3] की उत्पत्ति हुई है।

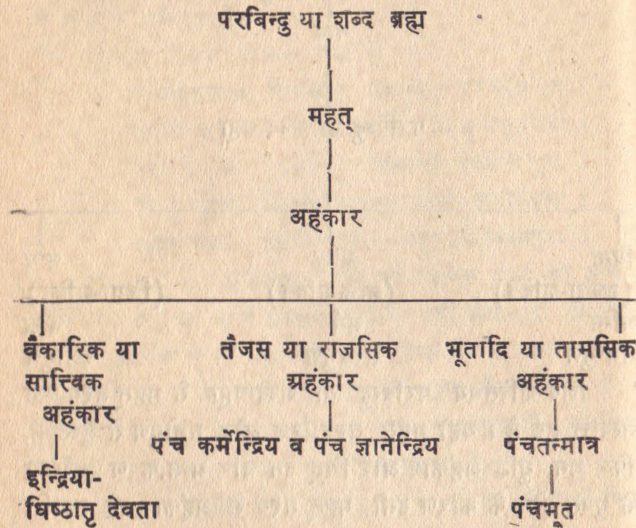
इंद्रियाधिष्ठातृ दश देवता—जैसे दिक्, वायु, सूर्य, वरुण,

१. पंचज्ञानेन्द्रिय : जैसे चक्षु, कर्ण, नासिका, जिह्वा, त्वक्।
२. पंच तन्मात्र : जैसे शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गंध।
३. पंचभूत : जैसे क्षिति, जल, तेज, वायु और आकाश।

अश्विनीकुमार-द्वय, अग्नि, इन्द्र, विष्णु, मित्र, (द्वादश सूर्य का तृतीय सूर्य)

पंचभूत से पंचीकरण या त्रितकरण प्रक्रिया से चरचारात्मक सर्वजगत् की उत्पत्ति हुई है।

इसलिए तन्त्र के अनुसार सृष्टि का क्रम इस प्रकार है :—



तान्त्रिक संकेत

प्रत्येक तांत्रिक उपासक को संकेत का ज्ञान होना अत्यन्त आवश्यक है। अगर उसे संकेत का ज्ञान न हो तो कुल-पूजा में उसका अधि-

कार ही नहीं होता और चक्र के भीतर उसे कोई स्थान नहीं होता। क्रम-संकेत, पूजा-संकेत, मंत्र-संकेत, यन्त्र-संकेत—इन संकेतों के ज्ञान के बिना अगर उसे कोई चक्र में नियुक्त करे तो उसकी पूजा तो निष्फल होती ही है, साथ ही उसे और आपत्तियाँ आ घेरती हैं।

क्रम-संकेत : 'ख' पुष्प, स्वयंभुकुसुम, कंडोद्भव, गोलोद्भव, वज्र पुष्प, उल्लास प्रौढ़ वगैरह हैं।

तन्त्र-ग्रन्थों में इन सभी सांकेतिक शब्दों के अर्थ निर्णीत हुए हैं। किसी सांकेतिक शब्दों के अर्थ अभिषिक्त गुरु के अलावा और किसी प्रकार से जानने का उपाय नहीं है।

मंत्र-संकेत—जैसे

भुवनेश्वरी बीज—

"नकुलीशोग्निमारूढ़ो वामनेन्नार्द्धचन्द्रवान्।"

नकुलीश शब्द में 'ह', अग्नि शब्द में 'र', वामनेत्र शब्द में 'ई' और अर्द्धचन्द्र शब्द में 'न' प्रतीत होता है। कुल मिलाकर 'ह्रीं' इस मन्त्र का उद्धार हुआ।

कालीबीज जैसे—

"वर्गाद्यं वह्निसंयुक्तं रति बिन्दुसमन्वितम्।"

वर्गाद्य का अर्थ 'क', 'वह्नि' शब्द का 'र', रति शब्द का 'ई' और बिन्दु का 'ं' है। इनको मिलाकर 'क्रीं' यह मन्त्र बना।

यन्त्र-संकेत : कैसा चक्र रहने से—उसे 'कौन यन्त्र कहा जाता है और उस यन्त्र का चित्र किस प्रकार का होता है उसे यन्त्र-संकेत कहते है।

तांत्रिक यन्त्र

यंत्र में देवता का निवास होता है। अतः यंत्र अंकित करके देवता की पूजा करनी पड़ती है। देवता का यंत्र अंकित करके धारण करने से विघ्नादि दूर हो जाते हैं। पूजा-यंत्र साधारणतः चन्दन से अंकित होता है। यंत्र लिखने में किन पदार्थों का प्रयोग करना चाहिए। इसके बारे में तन्त्र में इस तरह का निर्देश है—

"काश्मीर रोचना द्राक्षा मृगेभमद चन्दनैः।
विलिखेद्धेम लेखिन्या यन्त्राणि तानि देशिकः॥

काश्मीर, गोरोचना, द्राक्षा, मृगमद और चन्दन इन सब द्रव्यों से हेमलेखनी की सहायता से यंत्र लिखना चाहिए।

साधारणतः यंत्र दो प्रकार के होते हैं—एक तो धारण करने के लिए और एक पूजा करने के लिए। जिस देवता का यंत्र अंकित किया जाय उस यंत्र द्वारा उसी देवता की पूजा करनी चाहिए। शरीर पर धारण करने के लिए भोजपत्र आदि पर यंत्र अंकित कर विधि के अनुसार उसका संस्कार करना पड़ता है। यंत्र-संस्कार के लिए 'तन्त्रसार' में कहा गया है कि सबसे पहले साधक को विधि के अनुसार स्नान करने गुरु की अर्चना करनी चाहिए। उसके बाद 'ह्रीं' इस यंत्र से पंचगव्य का शोधन करने पर मंत्र से यंत्र का निक्षेप करेंगे। इसके बाद पंचगव्य से यंत्र को उठाकर स्वर्णपात्र पर स्थापित करके पंचामृत से स्नान करायेंगे। बाद में फिर दूध से यंत्र को नहलायेंगे—इसके पश्चात् दूध से निकालकर ठंडे जल में स्थापित करेंगे। उसके बाद चन्दन-सुगंधितद्रव्य, कस्तूरी, कुंकुम, दूध, दही, घृत, मधु और शर्करा आदि द्रव्यों से एक-एक कर फिर स्नान करायेंगे। इसके पश्चात् आठ

स्वर्ण-कलशों में भरे जल से स्नान करायेंगे।

इस तरह नहलाकर उस यंत्र को स्वर्णपात्र में रखकर 'यंत्र-राजाय विद्महे महायंत्राय धीमहि तन्नो यन्त्रः प्रचोदयात्' इस यंत्र-गायत्री का पाठ करके कुशा-घास के अग्र भाग से यंत्र को स्पर्श करके फिर से एक सौ आठ बार गायत्री मन्त्र का पाठ करके मन्त्र को अभिमंत्रित करे तो उस यंत्र में देवता का अधिष्ठान होता है। उसके बाद आत्म-शुद्धि करके देवता का षडंगन्यास करना पड़ेगा। फिर उस यंत्र में देवता का ध्यान और आवाहन करके उसमें षोडशोपचार द्वारा देवता की प्राण-प्रतिष्ठा करनी होगी, फिर विविध मुद्राओं द्वारा अपने इष्ट देवता की पूजा करनी चाहिए। इसके पश्चात् उस यंत्र पर रेशमी वस्त्र, अलंकार, मुद्गर, चामर, घण्टा और अन्यान्य यथायोग्य द्रव्य रत्न के साथ प्रदान करने चाहिए। अपनी सभी कामनाओं की सिद्धि के लिए एक हजार बार अपने इष्ट देवता का मन्त्र जपना चाहिए। इसके पश्चात् एक सौ आठ बार होम करना चाहिए। अगर साधक होम करने में असमर्थ हो तो इस संख्या का दुगना जप करना चाहिए। इसके बाद यथाशक्ति गुरु को अलंकृत धेनु (गाय) दक्षिणा में देनी चाहिए।

'तन्त्र प्रदीप' में कहा गया है कि जो व्यक्ति लकड़ी पर या अपने घर की दीवारों पर यंत्र को स्थापित करता है उसके पुत्र, पौत्र, धन और आयु का नाश होता है। भूमि स्पृष्ट, शव स्पृष्ट, विदीर्ण और लंघित यंत्र का धारण करना मना है।

सुवर्णपात्र में, रजतपात्र में, भोजपत्र पर, या ताम्रपट्ट पर यंत्र लिखकर गुटिका करके धारण करना चाहिए।

सुवर्णपात्र में अंकित यंत्र जीवन-भर धारण कर सकते हैं—रौप्य या रजत-पात्र पर अंकित मन्त्र बीस वर्ष, भोजपत्र पर लिखित यंत्र बारह वर्ष तथा ताम्र-पत्र पर लिखित यंत्र छः वर्ष तक धारण करना चाहिए।

Suman Sen Gupta

अभिचार-क्रिया

तांत्रिक साधना का प्रसंग आने पर आभिचारिक क्रिया की बात का उल्लेख करना भी आवश्यक है। तन्त्र-साधना की विशेषता क्या है इसके बारे में आगे चलकर प्रकाश डालेंगे। अभिचार-क्रिया तन्त्र-साधना का एक गौण अंग है। तन्त्र-साधना में भी दूसरी साधना की तरह ही आत्मज्ञान या मुक्ति को अंतिम लक्ष्य माना गया है। छोटे-छोटे स्वार्थ की सिद्धि देने वाली अभिचार-क्रिया का तो उसके समक्ष कोई महत्त्व ही नहीं है। कुछ शक्तिमान तांत्रिक साधन अपने साधना के पथ से भ्रष्ट होकर अपनी स्वार्थ-सिद्धि के लिये उनको प्रयोग करते हैं। यही इन अभिचार-क्रियाओं द्वारा देखा गया है। तांत्रिक साधक जो इस प्रकार की अभिचार-क्रिया में रुचि लेते थे, उनके समय और उनके बाद जिन तन्त्र-ग्रंथों की रचना हुई उन पुस्तकों में तन्त्र की इन अभिचार-क्रियाओं का काफी वर्णन किया गया है। वस्तुत: अगर ऐतिहासिक दृष्टिकोण से विश्लेषण किया जाय तो हम पायेंगे कि तिब्बत में जो बुद्ध धर्मावलम्बियों की एक शाखा थी वह इन क्रियाओं में काफी रुचि लेती थी। बंगाल और आसाम का तिब्बत से निकट होने के कारण इन तिब्बती अभिचार-क्रियाओं का प्रभाव उन पर पड़ा और उन्होंने शायद कुछ अंशों तक उन्हीं से ग्रहण किया। कुछ समय के लिये तो बंगाल और उसके पास असम और उड़ीसा के इलाके में इन अभिचार-क्रियाओं का बहुत अधिक जोर था। अभिचार-क्रिया या षट्कर्म तन्त्र-साधना में गौण होने से भी बाद में वह तन्त्र-साहित्य के एक अंग के रूप में ही गिना जाता है। यामल, उड्डीश और डामर ग्रंथ में अभिचार-क्रिया और भूत-

सिद्धि के अनेकों विवरण मिलते हैं। इसलिए तन्त्र के विषय की आलोचना करने के प्रसंग में अभिचारिक क्रिया आदि बातों का उल्लेख भी करना पड़ता है।

अभिचार-क्रिया का अर्थ ही हिंसा-कर्म है। तन्त्र-शास्त्रों में छ: प्रकार की अभिचार-क्रियाओं का उल्लेख है, जैसे— १. मारण २. मोहन, ३. स्तम्भन, ४. विद्वेषण, ५. उच्चाटन और ६. वशीकरण।

इन सबों के तन्त्र-मतानुसार संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है—

१. मारण—किसी खास क्रियानुष्ठान की सहायता से किसी का जीवन नष्ट करने को मारण कहते हैं। 'तन्त्रसार' ग्रंथ में मारण-क्रिया का वर्णन इस प्रकार है—

पहले नियम के अनुसार देवी की पूजा और होम इत्यादि करना। उसके बाद जिसका प्राण नष्ट करना हो उसका नाम लेकर नीचे लिखे मन्त्र से खड्ग को अभिमंत्रित करना। फिर 'विरुद्धे रूपिणि चंडिके वैरिणम् अमुकं देहि देहि स्वाहा'। उसके बाद एक बकरा लेकर 'तुम्हीं मेरे शत्रु अमुक व्यक्ति हो' इस तरह उसको शत्रु-रूप में कल्पना करनी पड़ती है। इसके बाद बकरे के मुंह को तीन स्थान पर लाल धागे से बांधकर उस पर शत्रु की प्राण-प्रतिष्ठा करनी पड़ती है। मन्त्र इस तरह है—'ओम् अयं स वैरी यो द्वेष्टि तमिमं पशुरूपिणम् विनाशय महादेवि स्फे-स्फे खादय खादय' इसी मन्त्र का पाठ करके बकरे के सिर पर फूल चढ़ाकर उसकी पूजा और फिर बलि-मन्त्र के पाठ करने का विधान है। इसके पश्चात् 'आ हुं फट्' इस मन्त्र का पाठ करके होम करने से तत्क्षण शत्रु का प्राण नाश होता है।

साधन पथ से भ्रष्ट तांत्रिक और साधारण दुष्ट आदमी अब भी कहीं-कहीं मारणादि अभिचार-क्रिया करते हैं। तन्त्र की पुस्तकों में यह भी उल्लेख मिलता है कि शतभिषा नक्षत्र में आधी

रात को पानी में गोता लेकर अगर कोई एक ही बार में सुपारी को दो टुकड़ा सरौता से कर दे तो इससे शत्रु के जीवन का नाश होता है। मारण-कार्य की देवता काली हैं। शनिवार और रविवार कृष्ण चतुर्दशी और अमावस्या की तिथियां इसके लिए अच्छी मानते हैं।

२. मोहन—विशेष क्रियानुष्ठान द्वारा किसी के मन को वश में करने को मोहन कहते हैं। पहले राजसभा, तर्क-सभा इत्यादि स्थानों में जाने के समय लोग इस तरह की क्रियाओं का अनुष्ठान करते थे। इस प्रकार का विश्वास किया जाता है कि इससे राजा या विचारक उनके ऊपर मोहित होकर उसके ऊपर अनुग्रह और कृपा करते हैं। ऐसे अभिचार से शाक्त तांत्रिक मन्त्र, होम और दवा वगैरह के प्रयोगों से दूसरे को मुग्ध किया करता है। अभिचार-क्रिया में पारंगत तांत्रिकों का ऐसा विचार है कि सधवा स्त्री की चिताभस्म, अगुरु व चन्दन एक साथ मिलाकर बाएँ हाथ की छोटी उंगली से कपाल पर टीका देने से उसको देखकर सभी मुग्ध होते हैं। अनेकों डामर ग्रंथों में कई प्रकार की सम्मोहिनी क्रियाओं का उल्लेख है। जिनमें से कुछ निम्नलिखित हैं—

१. तुलसीबीज का चूर्ण करके अगर बड़हल के रस के साथ पीसकर रविवार को ललाट पर तिलक करें तो इससे जगत के सभी जीवों को मोहित किया जाता है।

२. सिन्दूर, कुंकुम और गोरोचन को आमलकी के रस में मिलाकर ललाट पर टीका करने से सभी लोग मोहित होते हैं।

३. 'ओम् अं आं इं ईं उं ऊं ऋं हूं फट्' इस मन्त्र द्वारा अभिमंत्रित कर जिसे पान खाने को दिया जायगा वह तत्काल मोहित होगा।

४. 'ओम् भीं क्षीं भौं मोहय' जिस किसी को भी अपने हृदय में याद करके रात को तीन बार इस मन्त्र को जाप करे तो वह स्मरण किया गया व्यक्ति मोहित होता है।

५. भृंगराज, केशराज, लज्जावती लता, दंतोत्पल, इन सबों को एक साथ पीसकर तिलक करने से अखिल संसार को मोहित किया जा सकता है।

६. 'ओम् दंडाय महादंडाय स्वाहा' इस मंत्र से अगर पहनने के वस्त्रों में गाँठ लगा दी जाय तो वह व्यक्ति सबको मोहित कर सकता है।

३. स्तंभन—विशेष अनुष्ठान के द्वारा मन्त्र, अस्त्र, अग्नि व देह आदि की शक्ति को नाश करने को स्तंभन कहते हैं। इसके द्वारा दूसरों के अनिष्टकारी मन्त्रों का प्रभाव नहीं होता, दूसरों के द्वारा छोड़े गये अस्त्रों का शरीर पर घाव नहीं लगता और आग नहीं जलाती। अभिचार-क्रिया में कुशल और पारंगत तांत्रिक वाक्-स्तम्भन, हस्तपादादि स्तम्भन, शत्रु की सेना के आगमन का स्तम्भन आदि कर सकते हैं। तांत्रिकों का विचार है कि स्तम्भन की क्रिया जाड़े की ऋतु में करनी चाहिए जिससे परिणाम शीघ्र होता है। सोमवार और बुधवार, शुक्ला पंचमी और शुक्ला दशमी तथा पूर्णिमा होने से स्तम्भन-कार्य ठीक होता है।

४. विद्वेषण—विशेष क्रियानुष्ठान द्वारा आपस में दो प्रेम करने वाले व्यक्तियों के बीच घृणा और विद्वेष की सृष्टि जिस क्रिया द्वारा की जाती है उसे विद्वेषण कहते हैं। विद्वेषण-क्रिया ग्रीष्म ऋतु की पूर्णिमा के दिन ठीक दोपहर को करने का विधान है। एक हाथ में कौवे का पंख और दूसरे हाथ में उल्लू का पंख लेकर जिन दो व्यक्तियों के भीतर विद्वेष पैदा करना हो उनका नाम लेकर 'ओम् नमो महाभैरवाय श्मशान वासिन्यै अमुकामुकयोर्विद्वेषं कुरु कुरु फट्' इस मन्त्र का पाठ करके इन दो पक्षियों का अनुभाग एकत्र करके काले सूत से बांधने का विधान है। इसके बाद उस पंख को हाथ में लेकर तथा अंजलि में जल लेकर अगर नियमपूर्वक एक सप्ताह तक उपरोक्त पंख के साथ जप किया जाय तो दोनों व्यक्तियों के बीच विद्वेष की सृष्टि होगी।

विद्वेषण की देवता ज्येष्ठा है। बुध और बृहस्पतिवार, द्वितीया, तृतीया, पंचमी और सप्तमी तिथियां विद्वेषण-कार्य के लिए उत्तम हैं।

५. **उच्चाटन**—विशेष क्रियानुष्ठान द्वारा निर्दिष्ट व्यक्ति के मन को अस्थिर करना या उसे उन्मत्त करने को उच्चाटन कहते हैं। तन्त्र के मतानुसार, कृष्ण पक्ष की अष्टमी तिथि पर या चतुर्दशी तिथि में शनिवार होने से यह क्रिया अगर की जाय तो शीघ्र परिणाम होता है। इस अभिचार-क्रिया की देवता दुर्गा हैं। बाल का धागा बनाकर घोड़े के दांत की माला बनानी पड़ती है। उसके बाद दुर्गा की पूजा करके जिस व्यक्ति का नाम उस माला पर जपा जायगा उसका उच्चाटन होगा।

६. **वशीकरण**—जिस क्रिया के द्वारा किसी को वश में लाया जाता है, उसको वशीकरण कहते हैं। अभिचारात्मकतांत्रिक स्त्रियों को वश मे लाने के लिए तरह-तरह की दवाई इत्यादि का व्यवहार करते हैं। ऐसा कहा जाता है कि वच, कुड़, प्रियंगु और नागकेशर पान के साथ खिलाने से इच्छित औरत वशीभूत होती है। श्वेत अपराजिता की जड़ गोरोचन के साथ पीसकर जिसको वश में लाना हो उसका नाम सौ बार लेने से तथा कपाल पर टीका लगाने से सब कोई वश में हो जाते हैं। इस क्रिया द्वारा राजा, प्रभू, स्त्री तथा अन्यान्य सभी को वशीभूत किया जा सकता है। वशीकरण की देवता वाणी है। वशीकरण-कार्य में पूर्व की ओर मुँह करके जप करना चाहिए।

'ओम् चिटि-चिटि महाचांडालिनी अमुकं (जिस व्यक्ति को वश में करना हो उसका नाम लेकर) मे वशमानय स्वाहा' इस चिटि मन्त्र को अभिप्रेत व्यक्ति के नाम के साथ तालपत्र पर लिखकर दूध-मिले हुए पानी में डुबाकर रात को सिद्ध करने से वह व्यक्ति वशीभूत होता है।

तंत्रोक्त आकर्षणी विद्या वशीकरण का ही एक अंग है।

विभिन्न डामर तन्त्रों में आकर्षणी विद्या का उल्लेख हुआ है। इसके अन्तर्गत कई विषयों का उल्लेख किया जाता है।

(क) 'ओं' इस मंत्र से पाश और 'कों' इस मंत्र से अंकुश को अभिमंत्रित करके बाएँ हाथ से त्रिगुणित पाश और दाहिने हाथ से ज्वलित अंकुश को धारण करके 'ओम ह्रीं रक्तचामुण्डे तुरु तुरु अमुकीं (जिसे आकर्षित करना हो उसका नाम लेकर) आकर्षय स्वाहा' इस मंत्र का जप दस हजार बार करने से कार्य सिद्ध होता है।

(ख) 'ओम् कं हां हूं' इस मंत्र का जप करके जिससे भी मुलाकात करने जाओगे उसका मन जप करने वाले की ओर आकर्षित होगा।

(ग) 'ओम् स्त्री-स्त्री फट्' इस मंत्र को जप करने से जीव मात्र ही आकृष्ट होगा।

(घ) 'ओम् नं नां निं नीं नुं नूं नें नैं नों नौं नं नः' आकर्षय ह्रीं स्वाहा' इस मंत्र को छः अंगुल लम्बी उदुम्बर की लकड़ी की कीलक के ऊपर जिस इच्छित व्यक्ति के नाम का उल्लेख करने और उसके मकान में वही कीलक गाड़कर रखोगे वह स्त्री या पुरुष आकृष्ट होगा।

(ङ) काले धतूरे के पत्ते का रस और गोरोचन इन दो पदार्थों को मिलाकर करीबी की जड़ की लेखनी से भोजपत्र पर नीचे लिखे मंत्र के साथ जिसका नाम लिखकर जलते हुए खदिर लकड़ी के अंगारे पर रखोगे, वह इच्छित व्यक्ति हजारों कोस दूर रहने पर भी आकृष्ट होकर आयेगा।

मंत्र : ओम् नमः आदि पुरुषाय अमुकं (नामोल्लेख करके) आकर्षणं कुरु कुरु स्वाहा'।

(च) 'ओम् ह्रीं चामुण्डे ज्वल ज्वल स्वाहा' यह मन्त्र पहले दस हजार बार जप करके सिद्ध होने के बाद किसी कामिनी की ओर दृष्टिपात करने के बाद फिर से उस मन्त्र का पाठ करने पर वह रमणी उस व्यक्ति के पीछे-पीछे जायेगी।

(छ) 'भ्रां भ्रां भ्रां हां हां हां हैं हैं हैं' इस मंत्र का पाँच सौ बार जप करने से सचमुच फल लाभ होता है। इस आकर्षण-मंत्र से मनुष्य, असुर, देवता, यक्ष, नाग, राक्षस सभी आकृष्ट होते हैं।

तांत्रिक चिकित्सा-पद्धति को भी तांत्रिक षट्कर्म्म के ही अंश-रूप में ग्रहण किया जा सकता है। इस चिकित्सा-पद्धति का तिब्बत के बौद्धतांत्रिकों के बीच किसी समय काफी प्रचार था। बंगाल और असम राज्य के तांत्रिक सम्प्रदायों के बीच इस तांत्रिक चिकित्सा-पद्धति का काफी प्रचलन था और अब भी कुछ अंशों में यह प्रचलित है। तांत्रिक चिकित्सा-पद्धति में द्रव्यगुण को जिस तरह स्वीकार किया गया है, उसी तरह मंत्र-शक्ति को भी प्रधानता दी गई है। तरह-तरह की जड़ी-बूटी या दवा का व्यवहार करके तांत्रिक लोग बीमारी का दूर भगाते थे। तांत्रिकों के प्रसिद्ध 'तंत्र-सार' ग्रंथ से यहाँ हम एक दो मंत्र उद्धृत कर रहे हैं—

१. विषहर मन्त्र

'ओम् क्षः ओम् स्वरस्फुः ओम् हिलि हिलि मिलि मिलि चिलि चिलि हस्फुः ओम् हिलि हिलि चहस्फुः ब्रह्मणे फुः वैष्णव फुः इन्द्राय फुः सर्वेभ्यो देवेभ्ये फुः।' इस मंत्र से बिच्छु का विष नष्ट होता है।

'ओम् गेरिठः' इस मंत्र से चूहे का विष नष्ट होता है। 'ओम् ह्रां ह्रीं ह्रं ओम स्वाहा ओम गरुड़ सं हुं फट्' इस दुर्गा मंत्र से मकोड़े का विष नष्ट होता है।

'ओम् नमो भगवते विष्णवे सर सर हन हन हुं फट् स्वाहा' इस विष्णु-मंत्र से सब प्रकार के कीड़ों का विष नष्ट होता है।

२. सुख प्रसव मन्त्र :

'ओम् मन्मथ मन्मथ वाहि लम्बोदर मुंच मुंच स्वाहा।'

इस मंत्र से आठ बार जल का अभिमन्त्रित करके उस जल को आसन्न-प्रसवा गर्भिणी को पिलाने से वह स्त्री प्रसव काल में कुछ भी कष्ट नहीं पाती है।

'ओम् मुक्ता पाशा विपाशाश्च मुक्ता सूर्य्येण रश्मयः। मुक्तः सर्वभयाद् गर्भः सह्येहि मारीच मारीच स्वाहा'॥ इस मंत्र का भी उपरोक्त मन्त्र के अनुसार प्रयोग करने से भी प्रसव बिना किसी कष्ट के होता है।

तरह-तरह की लता, पत्ती, जड़ी, बूटी, फल, फूल वगैरह औषधियों की सहायता से भी तांत्रिक चिकित्सा की पद्धति प्रचलित थी। इस दृष्टि से विचार करने से तन्त्र-शास्त्र को ही आयुर्वेद शास्त्र का भी मूल कारण मानते हैं। मत्स्य सूक्त के इक्कीसवें पटल में अनेकों प्रकार की औषधियों का वर्णन है। उसमें बताई गई कुछ औषधियों का हम नीचे उल्लेख कर रहे हैं—

(क) काली तुलसी के पत्ते का रस मधु के साथ मिलाकर उसे सरसों के तेल में थोड़ा गर्म करके कान में डालने से कान के कीड़े नष्ट होते हैं।

(ख) जामुन के पत्ते का रस रात को कान में देने से भी कान पाका (अगर कान में किसा प्रकार का बहने वाला घाव हो) इत्यादि बीमारी ठीक होती है।

(ग) हस्ति शुण्डा (हाथी शुण्डा) के पत्ते का रस आँख में डालने से आँख का दर्द आरोग्य होता है।

(घ) त्रिफला, गुड़ और अदरक एक साथ मिलाकर प्रातःकाल सेवन करने से कामला रोग नष्ट होता है।

(च) बनमरीच के बीज को पीस करके बकरी के दूध के साथ लगाने से सभी प्रकार के चर्म रोग दूर होते हैं।

भूत सिद्धि

अभिचार-क्रिया और षट् कर्म की तरह ही भूत-सिद्धि भी तंत्र-साधना का एक गौण अंग है। वास्तविक रूप में ये सभी छोटी-मोटी सिद्धियां साधन-मार्ग के ही अन्तर्गत हैं। बहुत काल तक तांत्रिक तथाकथित साधक समाज में इनकी चर्चा और प्रयोग होता आया है। अतः इनकी भी गणना तन्त्र के अन्तर्गत होने से इनका उल्लेख भी यहाँ करना आवश्यक है। विभिन्न तंत्र-ग्रन्थों में इनका विवरण आश्चर्य प्रदान करने वाला है। इनमें से कुछेक का वर्णन हम यहाँ दे रहे हैं—

(क) भूतिनी-साधन

भूतिनी का साधन करने से कुंडल धारिणी, सिन्दूरिणी, हारिणी, नटी, महानटी, चेटिका, कामेश्वरी, कुमारिका—इन आठ रूपों में भूतिनी का आविर्भाव होता है। साधक की इच्छा के अनुसार भार्य्या, माता या भगिनी के रूप में आकर साधक की इच्छा की पूर्ति करती है।

रात को चंपक वृक्ष की जड़ पर बैठकर आठ हजार बार भूतिनी मंत्र का जप करना पड़ता है।

मंत्र इस प्रकार है :—

'ओम् ह्रों क्रूं क्रूं कटु कटु ओम् अमुकं क्रूं क्रुं ऊं अः।' इस

प्रकार तीन रात्रि को लगातार जप करके पूजा करनी पड़ती है। इसके बाद धूप और गुग्गुल देकर फिर से मंत्र का जप करना पड़ता है। फिर आधी रात बीतने पर भूतिनी आती है। उस समय भूतिनी के आगमन पर उसे चन्दन और पानी से अर्घ्य देना पड़ता है। फिर भूतिनी साधक की साधना से प्रसन्न होकर साधक की इच्छा के अनुसार माता, बहिन या भार्या बनकर रहती है। माता के रूप में ग्रहण करने पर वह साधक को आठ सौ कपड़े, आभूषण और नाना प्रकार के खाद्य पदार्थ प्रदान करती है। भगिनी के रूप में आने पर वह साधक को सुन्दर कामिनी लाकर प्रदान करती है। भार्या के रूप में आने पर प्रतिदिन हजार स्वर्ण मुद्राएं प्रदान करती है।

कुंडलवती भूतिनी का साधन करने से रात को श्मशान जाकर आठ हजार बार जप जपना पड़ता है। जप की समाप्ति पर कुंडलवती भूतिनी साधक के पास आती है। उस समय उसको रक्त से अर्घ्य प्रदान करना पड़ता है। इस पर भूतिनी संतुष्ट होकर माता के समान साधक का प्रतिपालन करती है।

सिन्दूरिणी भूतिनी का साधन करने के लिए शून्य देवालय में आधी रात्रि को बैठकर आठ हजार बार मंत्र का जप करना पड़ता है इससे सिंदूरिणी आकर साधक की भार्या के रूप से सेवा करती है।

हारिणी भूतिनी का साधन करने के लिए किसी शिव-मंदिर में शिव लिंग के पास बैठकर रात्रि को अस्सी हजार बार मंत्र जपना पड़ता है। इससे हारिणी आकर साधक से पूछती है, 'तुम्हें क्या चाहिए?" तब साधक उसे कहता है, 'तुम मेरी भार्या बनो।' भूतिनी उससे प्रसन्न होकर असंख्या स्वर्ण-मुद्राएँ और भोज्य वस्तु प्रदान करती है।

(ख) योगिनी साधन

सुरसुंदरी, मनोहरा, कनकावती, कामेश्वरी, रतिसुंदरी, पद्मिनी, नटिनी, अनुरागिनी, आदि विभिन्न रूपों में योगिनी का साधन प्रचलित है। योगिनी साधन, बहुत ही रहस्यपूर्ण और गोपनीय है। सुर सुन्दरी योगिनी, का साधन करने के लिए साधक को मुंह-अंधेरे ही बिछावन का परित्याग करना चाहिए, फिर स्नानादि प्रातःकृत्य करके संध्यावंदनादि सम्पूर्ण करना चाहिए। उसके बाद 'ह्रीं' इस मन्त्र से आचमन 'ॐ सहस्रार हुँ फट्' इस मन्त्र से दिग्बंधन, मूल मन्त्र से प्राणायाम, 'ॐ ह्रां अंगुष्ठाभ्यां नमः' आदि क्रम के अनुसार करांगन्यास करना पड़ता है। इसके बाद चन्दन से अष्ट दल कमल का चित्र बनाकर उसमें देवी का मन्त्र लिखना पड़ता है। उसके बाद देवी का ध्यान करना पड़ता है ध्यान का मंत्र इस प्रकार है :—

'पीठ देवीं समावाह्य ध्यायेद्देवीं जगत्प्रियाम्।
पूर्ण चंद्रनिभां गौरीं विचित्रावरण धारिणीम्॥
पीनोत्तुंग कुचां वामां सर्वेषाम् भय प्रदाम्।

इस तरह ध्यान करके मूल मन्त्र का उच्चारण करके 'धूप, दीप, नैवेद्य, गन्ध, चन्दन और ताम्बूल अर्पण करके देवी की पूजा करनी पड़ती है। मंत्र इस प्रकार है :—

'ओम् ह्रीं आगच्छ सुरसुंदरि स्वाहा'

साधक प्रत्येक त्रिसन्ध्या में ध्यान करके एक हजार बार मंत्र का जप करेगा। इस प्रकार मास-भर जप करने के बाद महीने के अन्त में तरह-तरह के द्रव्यों से देवी की अर्चना करेगा। इतनी साधना सम्पूर्ण होने पर देवी साधक के पास आती है। तब साधक फिर से देवी की पूजा करके फूल और चन्दन प्रदान करेगा। उसके बाद साधक देवी को माता, बहन या भार्या, जिस रूप में भी उसने ध्यान किया है वैसा कहकर देवी को सम्बोधित करेगा। मातृ-रूप से ध्यान करने से देवी विविध मनोहर द्रव्य प्रदान करेगी

और प्रत्येक दिन आकर उसका प्रतिपालन पुत्र के समान करेगी। भगिनी भाव से देवी का ध्यान करने पर देवी तरह-तरह के द्रव्य और वस्त्र प्रदान करती है, और दिव्य कन्या लाकर प्रदान करती है। देवी साधक का अपने भाई के समान पालन करती है और साधक की सभी कामनाएँ पूर्ण कर देती है। देवी की भार्या-रूप में साधना करने से साधक संसार के हर प्रकार के सुखों का उपभोग कर सकता है और राजा के समान ऐश्वर्य का स्वामी बनता है। भार्या-रूप में योगिनी का साधन करने से साधक दूसरी स्त्री की ओर से अपनी आसक्ति का त्याग करेगा नहीं तो देवी कुपित होकर साधक का नाश कर देती है।

मनोहरा योगिनी का साधन करने के लिए नदी के किनारे स्नानादि नित्य कर्म सम्पन्न करके पूर्वोक्त रूप से न्यासादि कर्म करेगा। उसके पश्चात् चंदन से मण्डल का चित्र बनाकर उस मंडल के भीतर देवी का मंत्र लिखकर मनोहरा योगिनी का ध्यान करेगा। मनोहरा योगिनी के ध्यान का मंत्र इस प्रकार है :—

'कुरंग नेत्रां शरदिंदुवस्त्रां बिंबाधरां चन्दन गंध लिप्ताम्।
चीनांशुकां पीनकुचां मनोज्ञां श्यामां सदा कामदुधां विचित्राम्॥'

इस तरह ध्यान करके पूजा के बाद का मंत्र जपना पड़ता है। इसके बाद अगुरु, धूप, दीप, गंध, पुष्प, मधु, ताम्बूल आदि मूल मंत्र से पूजा करनी पड़ती है।

'ॐ ह्रीं आगच्छ मनोहरे स्वाहा' इस मंत्र का जप प्रत्येक दिन दस हजार बार करना पड़ता है। इस पर मनोहरा योगिनी प्रसन्न होकर साधक के पास आती है और वर माँगने के लिए कहती है। साधक तब फिर से देवी का ध्यान करके सब विधि से उनकी पूजा करेगा। इस योगिनी की पूजा में 'ह्रीं' इस मंत्र से प्राणायाम और 'ह्रां अंगुष्ठाभ्यां नमः।' इस मंत्र से करांगन्यास करना पड़ता है। इसके बाद विविध उपचारों से पूजा करने से देवी प्रसन्न होकर साधक की अभिलाषा पूर्ति करती है। देवी

साधक को प्रत्येक दिन सौ सुवर्ण मुद्राएँ प्रदान करती है। इस योगिनी का साधन करने से भी साधक को दूसरी स्त्री के सहवास का पूर्ण परित्याग करना पड़ता है। इस योगिनी की सिद्धि प्राप्त हो जाने पर साधक जहाँ भी चाहे सर्वत्र अपनी प्रसन्नता के अनुसार भ्रमण कर सकता है।

साधक पूर्ण जितेन्द्रिय होकर वसंत ऋतु में योगिनी का साधन करेगा। जो लोग देवी के उपासक हैं केवल वे ही इस कार्य के अधिकारी हैं। संन्यासी के लिए ये सभी कार्य निषिद्ध हैं।

(ग) यक्षिणी साधन

सुरसुन्दरी, मनोहारिणी, कनकावती, कामेश्वरी, रतिप्रिया, पद्मिनी, महानटी, अनुरागिनी, इन आठ प्रकार की यक्षिणी के साधन का उल्लेख तन्त्र-शास्त्र में है।

सुरसुन्दरी यक्षिणी का साधन करने के लिए साधक को वज्रपाणि के स्थान पर जाकर गुग्गुल और धूप प्रदान करके प्रतिदिन त्रिसंध्या में हजार बार सुरसुन्दरी का मंत्र जपना पड़ता है। मंत्र इस प्रकार है :—

'ॐ आगच्छ सुरसुन्दरी ह्रीं ह्रीं स्वाहा।' पूरे महीने-भर इस प्रकार जप करने के बाद अन्तिम दिन लाल चन्दन से अर्घ्य देना पड़ता है। इससे प्रसन्न होकर देवी आती है और साधक की इच्छा के अनुसार माता, बहन या भार्या, बनकर रहती है। यक्षिणी की माता के रूप में साधना करने से लाख स्वर्ण मुद्राएँ और तरह-तरह के द्रव्य प्रदान करती है। माता के समान साधक का पालन-पोषण करती है। बहन-रूप में आराधना करने से देवी दिव्यकन्या और नाना प्रकार के द्रव्य साधक को प्रदान करती है। भार्या-रूप में साधना करने से देवी परम ऐश्वर्य प्रदान करती है और साधक के मन की प्रत्येक प्रकार की इच्छा पूर्ण करती है। भार्या के रूप में यक्षिणी की साधना करने से साधक को अन्य

किसी भी स्त्री के साथ सहवास का पूर्ण त्याग करना पड़ता है। देवी जो कुछ देती है उसका सम्पूर्ण खर्च करना मना है। सब खर्च कर देने से यक्षिणी क्रोधित हो जाती है और फिर कुछ प्रदान नहीं करती है और फिर उस देवी के दर्शन नहीं होते हैं।

अन्यान्य यक्षिणियों के साधन के अलग-अलग मंत्र और साधन-पद्धतियाँ हैं। यहाँ उन सभी को उद्धृत करना संभव नहीं है।

तान्त्रिक सम्प्रदाय और तन्त्र-ग्रंथ

उपास्य देवता व उपासना की पद्धति के भेद के अनुसार तांत्रिक उपासक कई शाखाओं में विभक्त हैं। शिव, शक्ति, विष्णु, सूर्य और गणेश के उपासक क्रम के अनुसार शैव, शाक्त, वैष्णव, सौर और गाणपत्य सम्प्रदाय के नाम से परिचित हैं। एक-एक सम्प्रदाय भी फिर अनेकों उप-सम्प्रदायों में विभक्त है। विभिन्न शाखाओं के बीच भी अनेक छोटी-छोटी बातों को लेकर अनेक भेद हैं। शैव सम्प्रदाय की प्रधान चार शाखाएँ शैव, पाशुपत, कालामुख और कापालिक के नाम से प्रसिद्ध हैं। माधवाचार्य के 'सर्वदर्शन संग्रह' में पाशुपत सम्प्रदाय का विस्तृत परिचय मिलता है। अन्य शैव सम्प्रदायों में कश्मीर का प्रत्यभिज्ञा सम्प्रदाय और दाक्षिणात्य में सिद्धान्तागम के मानने वाले तथा वीर शैव सम्प्रदाय खास रूप से प्रसिद्ध हैं। अपने गले में शिवलिंग को धारण करना वीर शैव के अनुयायियों का एक विशेष चिह्न है। शाक्तों के बीच गौड़, केरल, दिगम्बर, क्षपणक आदि सम्प्रदाय उल्लेखनीय हैं। विभिन्न सम्प्रदायों के आचार और अनुष्ठान में भी

काफी भेद देखा जाता है। श्री चिन्ताहरण चक्रवर्ती ने अपनी 'तंत्र कथा' नामक पुस्तक में इसका विस्तृत विवेचन किया है। प्रसिद्ध वैष्णव सम्प्रदाय के बीच पाँचरात्र सम्प्रदाय विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इसके अतिरिक्त श्री वैष्णव सम्प्रदाय, माध्व सम्प्रदाय और गौडीय सम्प्रदाय भी काफी प्रभावशाली है। हर सम्प्रदाय के समर्थन में उनके अलग-अलग तंत्र-ग्रंथ हैं।

तंत्र-ग्रंथों की संख्या को लेकर काफी विवाद है। 'महासिद्ध-सार तंत्र' में भारतवर्ष को तीन भागों में विभक्त किया गया है। विष्णुक्रान्ता, रथक्रान्ता, और अश्वक्रान्ता। कहा जाता है कि प्रतिक्रान्ता में चौसठ तंत्र-ग्रंथ प्रचलित हैं। 'शक्ति मंगल तंत्र' के मतानुसार विंध्यपर्वत के रूप में जावा तक सारा भू-भाग विष्णुक्रान्ता है। विंध्यपर्वत के उत्तर में महाचीन तक (चीन और नेपाल सहित) सारा भूभाग रथक्रान्ता है तथा पश्चिम भारत का विस्तृत भूभाग अश्वक्रान्ता है। इस सीमा-निर्देश के बारे में काफी मतभेद है।

विष्णुक्रान्ता के चौंसठ तन्त्र-ग्रन्थ हैं :—

१. सिद्धीश्वर, २. काली तंत्र, ३. कुलार्णव, ४. ज्ञानार्णव, ५. नील तन्त्र, ६. फेतकारिणी, ७. देवी आगम, ८. उत्तरतन्त्र, ९. श्री क्रम, १०. सिद्धयामल, ११. मत्स्य सूक्त, १२. सिद्ध सार, १३. सिद्धि सारस्वत, १४. वाराही, १५. योगिनी, १६. गणेश विमर्शिणी, १७. नित्या तन्त्र, १८. शिवागम, १९. चामुण्डा, २०. मुण्डमाला ,२१. हंस महेश्वर, २२. निरुत्तर, २३. कुल प्रकाशक, २४. देवी कल्प, २५. गन्धर्व, २६. क्रियासार, २७. निबन्ध, २८. स्वतन्त्र, २९. सम्मोहन, ३०. तंत्र राज, ३१. ललिता, ३२. राधातन्त्र, ३३. मालिनी ३४. रुद्रयामल, ३५. बृहत श्रीक्रम, ३६. गवाक्ष, ३७. सुकुमुदिनी, ३८. विशुद्धश्वर, ३९. मालिनी विजय, ४०. भैरवी, ४१ योगिनीहृदय, ४२. भैरव, ४३. समयाचार, ४४. सनत्कुमार, ४५. योनि, ४६.

तन्त्रान्तर, ४७. नवरत्नेश्वर, ४८. कुल चूड़ामणि, ४९. भाव चूड़ामणि, ५०, देव प्रकाश, ५१. कामाख्या ५२. कामधेनु, ५३. कुमारी, ५४. भूत डामर, ५५. यामल, ५६. ब्रह्म यामल, ५७. विश्वसार, ५८. महाकाल, ५९. कुलोड्डीश, ६०. कुलामृत, ६१. कुंचिका, ६२. यन्त्र चिन्तामणि, ६३. काली विलास, ६४. माया तन्त्र

रथक्रान्ता के चौसठ तन्त्र-ग्रन्थ हैं :—

१. चिन्मय, २. मत्स्य सूक्त, ३. महिष मर्दिनी, ४. मातृकोद्गम, ५. हंस महेश्वर, ६. मेरु, ७. महानील, ८. महानिर्वाण ९. भूत डामर, १०. देव डामर, ११. बीज चिन्तामणि, १२. एक जाता, १३. वासुदेव रहस्य, १४. वृहत गौतमीय, १५. वर्णोद्धति, १६. छाया नील, १७. वृहद योनि, १८. ब्रह्मज्ञान, १९. गरुड़, २०. वर्ण विलास, २१. बाला विलास, २२. पुरश्चरण, २३. पुरश्चरणोल्लास, २४. पंचदशी, २५. पिच्छिला, २६. प्रपंचसार, २७. परमेश्वर, २८. नवरत्नेश्वर २९. नारदीय, ३०. नागार्जुन, ३१. योगसार, ३२. दक्षिणामूर्ति, ३३. योग-स्वरोदय, ३४. यक्षिणी तंत्र, ३५. स्वरोदय, ३६. ज्ञान भैरव, ३७. आकाश भैरव, ३८. राज राजेश्वरी, ३९. रेवती, ४०. सारस, ४१. इंद्रजाल, ४२. कुकलासदीपिका, ४३. कंकालमालिनी, ४४. कालोत्तम, ४५. यक्ष डामर, ४६. सरस्वती, ४७. शारदा, ४८. शक्ति संगम, ४९. शक्ति आगम सर्वस्व, ५०. सम्मोहिनी ५१. आचार सार, ५२. चीना सार, ५३. सदाम्नाय, ५४. कराल भैरव, ५५. शोध, ५६. महालक्ष्मी, ५७. कैवल्य, ५८. कुल सद्भाव, ५९. सिद्धिताधारी, ६०, कृतिसार, ६१. काल भैरव, ६२. उड्डमरेश्वर, ६३. महाकाल, ६४. भूत भैरव।

अश्वक्रान्ता के चौंसठ तन्त्र-ग्रन्थ :—

१. भूतसिद्धि, २. गुप्त दीक्षा, ३. वृहत सार, ४. तत्व सार, ५. वर्ण सार, ६. क्रिया सार, ७. गुप्त सार, ८. गुप्त

तन्त्र, ९. वृहत्तोडल, १०. वृहन्निर्वाण, ११. बृहत् कंकालिनी, १२. सिद्धतन्त्र, १३. कलातन्त्र, १४. शिवतन्त्र, १५. सारात् सार, १६. गौरी तन्त्र, १७. योग तन्त्र, १८. धर्मक तन्त्र, १९. तत्व चिन्तामणि, २०. बिन्दु तन्त्र, २१. महा योगिनी, २२. वृहत योगिनी, २३. शिवार्चन, २४. शबर, २५. शूलिनी, २६. महा मोलिनी, २७. मोक्ष, २८. वृहन्मालिनी, २९. महा मोक्ष, ३०. वृहन्मोक्ष, ३१. गोपीतन्त्र, ३२. भूत लिपि, ३३. कामिनी ३४. मोहिनी, ३५. मोहन, ३६. समीरण, ३७. कामकेशव, ३८. महावीर, ३९. चूड़ार्माण, ४०. गुर्वर्चनी, ४१. गोपीय, ४२. तीक्ष्ण, ४३. मंगला, ४४. कामरत्न, ४५. गोपलीलामृत, ४६. ब्रह्मानन्द, ४७. चीन, ४८. महानिरुत्तर, ४९. भूतेश्वर, ५०. गायत्री, ५१. विशुद्धेश्वर, ५२. योगार्णव, ५३. भेरण्डा, ५४. मन्त्र चिन्तामणि, ५५, यन्त्र चूड़ामणि, ५६. विद्युल्लता, ५७. भुवनेश्वरी, ५८. लीलावती, ५९. वृहत चीनी, ६०. कुरंज ६१. जय राधा माधव, ६२. उज्जशाक, ६३. धूमावती, ६४. शिव।

तांत्रिक साधक सम्प्रदायों के दार्शनिक तत्व और आचार-अनुष्ठान को आधार बनाकर ही विशाल तन्त्र-शास्त्र की रचना हुई है। इसके अन्तर्गत उपनिषद्, सूत्र-मूलतन्त्र, टीका और संकलन-ग्रन्थ हैं। मूल तन्त्र देवता के मुँह से निकली हुई वाणी है। कई तंत्रों के वक्ता शिव और श्रोत्री पार्वती हैं। इसके विपरीत कई तन्त्रों की वक्ता पार्वती और श्रोता शिव हैं। ये क्रमानुसार आगम और निगम के नाम से विख्यात हैं। 'आगम द्वैत निर्णय' ग्रन्थ में आगम और निगम की व्याख्या इस प्रकार की गई है :

आगम :— आगतं शम्भुवक्त्रेभ्यो,
गतं च गिरिजाश्रुतौ।
मतं च वासुदेवेन,
तस्मादागम उच्यते ॥

निगम:— निर्गता गिरिजावक्त्रात्,
गतं च गिरीश श्रुतिम्।
मतं तु वासुदेवस्य,
निगमः परिकथ्यते ॥

'देवी भागवत' के मतानुसार :—

'कामिका' आदि पांच तन्त्र शिव के 'सद्योजात', नामक मुँह से, 'दीप्त' आदि पांच तन्त्र शिव के 'अघोर' नामक मुँह से, 'वैरोचन' आदि पांच तन्त्र शिव के 'तत्पुरुष' नामक मुंह से और 'प्रोद्गीत' आदि आठ तन्त्र, शिव के 'ईशान' नामक मुंह से प्रकाशित हुए हैं।

तांत्रिक उपनिषदों की कुल संख्या कितनी है इसके बारे में निश्चित रूप से कहना कठिन है। मद्रास के वैष्णव, शैव और शाक्तों के प्रायः चालीस उपनिषद् प्रकाशित हुई हैं। इनके अतिरिक्त कौलोपनिषद्, त्रिपुरा महोपनिषद् और कई योगोपनिषद् भी मिलते हैं।

तन्त्र-साहित्य में सूत्र-ग्रन्थों की संख्या विशेष नहीं है। शाक्त सम्प्रदाय की ओर से श्री विद्यारत्न सूत्र और तारानन्द सूत्र प्रकाशित हुई हैं। शैव सम्प्रदाय की ओर से शिव सूत्र और पाशुपत सूत्र प्रकाशित हुई हैं। मूलतन्त्र की संख्या निश्चित करना भी कठिन है। मूल तन्त्र की एक से अधिक तालिका मिलने के कारण यह कहना भी कठिन है कि इनमें कौनसी विशेष प्रामाणिक है। 'आगम तत्व विलास' में निम्नलिखित तन्त्रों का उल्लेख है :—

१. स्वतन्त्र तंत्र, २. फेत्कारी तंत्र, ३. उत्तर तंत्र, ४. नील तंत्र, ५. वीर तंत्र, ६. कुमारी तंत्र, ७. काली तंत्र, ८. नारायणी तंत्र, ९. तारिणी तंत्र, १०. बाला तंत्र, ११. समयाचार तंत्र, १२. भैरव तंत्र, १३. भैरवी तंत्र, १४. त्रिपुरा तंत्र, १५. वामकेश्वर तंत्र, १६. कुक्कुटेश्वर तंत्र, १७. मातृका तंत्र, १८. सन्तकुमार तंत्र, १९. विशुद्धेश्वर तंत्र, २०. सम्मोहन तंत्र,

२१. गौतम तंत्र, २२. वृहत गौतमीय तंत्र, २३. भूत-भैरव तंत्र, २४. चामुण्डा तंत्र, २५. पिंगला तंत्र, २६. वाराही तंत्र, २७. मुण्डमाला तंत्र, २८. योगिनी तंत्र, २९. मालिनी विजय तंत्र, ३०. स्वछन्द भैरव तंत्र, ३१. महा तंत्र, ३२. शक्ति तंत्र, ३३. चिन्तामणि तंत्र, ३४. उन्मत्त भैरव तंत्र, ३५. त्रैलोक्यसार तंत्र, ३६. विश्वसार तंत्र, ३७. तंत्रामृत, ३८, महाफेत्कारी तंत्र, ३९. वायवीय तंत्र, ४०. तोड़ल तंत्र, ४१. मालिनी तंत्र, ४२. ललिता तंत्र, ४३. त्रिशक्ति तंत्र, ४४. राज राजेश्वरी तंत्र, ४५. महा-मोहस्वरोत्तर तंत्र, ४६. गवाक्ष तंत्र, ४७. गान्धर्व तंत्र, ४८. त्रैलोक्य मोहन तंत्र, ४९. हंस परमेश्वर, ५०. हंस मोहेश्वर, ५१. कामधेनु तंत्र, ५२. वर्ण विलास तंत्र, ५३. माया तंत्र, ५४. मंत्रराज तंत्र, ५५. कुब्जिका तंत्र, ५६. विज्ञान तंत्र, ५७. लिंगागम तंत्र, ५८. कालोत्तर तंत्र, ५९. ब्रह्मजामल, ६०. आदि जामल, ६१. रुद्र जामल तंत्र, ६२. वृहज्जामल तंत्र, ६३. सिद्ध जामल तंत्र, ६४. कल्पसूत्र तंत्र।

इसके अतिरिक्त और भी तंत्र-ग्रन्थों के नाम मिलते हैं जैसे—

१. कुल सूक्त, २. कामराज, ३. वीर भद्रोड्डीश, ४. कुल सर्वस्व, ५. कालिकाकुल, ६. दिव्य, ७. कुलावली, ८. काली कुलार्णव, ९. कुल प्रकाश, १०. योगिनी जालकुरक, ११. लक्ष्मी कुलार्णव, १२. तारार्णव, १३. चन्द्रपीठ, १४. चतुःशती, १५. तत्व बोध, १६. महोग्र, १७. तारा प्रदीप, १८. संकेत चन्द्रोदय, १९. षट्त्रिंशतत्वक्, २०. लक्ष्य निर्णय, २१. त्रिपुरार्णव, २२. विष्णु धर्मोत्तर, २३. मन्त्र दर्पण, २४. वैष्णावामृत, २५. मान-सोल्लास, २६. भक्ति मंजरी, २७. सिद्धान्त शेखर, २८. ज्ञान-माला, २९. तत्व सागर, ३०, देव प्रकाशिनी, ३१. क्रमदीपिका ३२. तारा रहस्य, ३३. श्यामा रहस्य, ३४. तारा विलास, ३५. विश्वमातृका, ३६. रत्नावली, ३७. आचार सार प्रकरण, ३८. आचार सार तंत्र, ३९. आगम चन्द्रिका, ४०. अनन्दाकल्प, ४१.

ब्रह्मज्ञान महातंत्र, ४२. ब्रह्माण्ड तंत्र, ४३. दक्षिणा कल्प, ४४. गौरी कंचुलिका तंत्र, ४५. ब्राह्मणोल्लास, ४६. गुह्यामल तंत्र, ४७. ईशान संहिता, ४८. जप रहस्य, ४९. ज्ञानानन्द तरंगिनी, ५०. कैवल्य तंत्र, ५१. ज्ञान संकेलिनी तंत्र, ५२. कौलिकार्चन दीपिका, ५३. क्रम चन्द्रिका, ५४. कुमारी कवचोल्लास, ५५. लिंगार्चन तंत्र, ५६. वरदा तंत्र, ५७. वर्ण भैरव, ५८. वर्णोद्धार, ५९. बीज चिन्तामणि, ६०. अमृत शुद्धि, ६१. सिद्ध संवरण, ६२. नील पताका, ६३. कामरत्न, ६४. पूजा प्रदीप इत्यादि।

विभिन्न तांत्रिक सम्प्रदायों की अलग-अलग तालिकाएँ भी मिलती हैं। वैष्णवों में पांचरात्र सम्प्रदाय के आगम की संख्या लगभग आठ सौ है, ऐसा उल्लेख मिलता है। इसके अतिरिक्त अन्यान्य वैष्णव सम्प्रदायों के भीतर भी अनेकानेक तंत्रों का प्रचलन है। दाक्षिणात्य के तांत्रिकों की आगम-संख्या कुल २८ होते हुए भी उनके उपभेद २०० से भी अधिक हैं।

कश्मीरी तंत्रों की संख्या भी कम नहीं है। गाणपत्य सम्प्र-दाय के तंत्र-ग्रन्थों के अन्तर्गत 'कुमार संहिता' और 'विनायक संहिता' विशेषकर उल्लेखनीय हैं। अनेक साधक और विद्वानों ने समय-समय पर तन्त्र-शास्त्र की अनेक टीकाएं और संकलन-ग्रन्थों की रचना की है।

संकलन-ग्रंथ-रचनाकारों में लक्ष्मणदेशिक, शंकराचार्य, कृष्णानन्द, आगमवागीश, राघवानन्द, राघव भट्ट, विरूपाक्ष, गोविन्द भट्ट आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। संकलन-ग्रंथों में रामा-र्चन चन्द्रिका, मंत्र मंजरी, मंत्र मुक्तावली, सार संग्रह, भुवनेश्वरी पारिजात, शारदा तिलक, त्रिपुरा सार, समुच्चय, प्रपंचसार, स्वच्छन्द संग्रह, सार समुदधि, तंत्र-मंत्र प्रकाश, सोम मुक्तावली, तंत्रसार, हरतत्वदीधिति, प्राणतोषणी आदि विशेष प्रसिद्ध हैं।

तन्त्रशील के अनेकों ग्रंथ अब विलुप्त हो चुके हैं फिर भी विभिन्न सम्प्रदायों की जो तालिकाएँ उपलब्ध हैं और संकलन-

ग्रंथों से जिन नामों का उल्लेख मिलता है—अगर इन सबों को मिलाकर देखें तो अब तक प्रकाशित और अप्रकाशित तंत्र-ग्रंथों की संख्या कई हजार होगी।

बौद्ध-तंत्रों के बारे में भी यहाँ कुछ उल्लेख करना अप्रासांगिक नहीं होगा। बौद्ध-तंत्र की मुख्य विशेषताएँ संक्षेप में निम्नलिखित हैं :—

हिन्दू तंत्र जैसे शिवोक्त हैं ठीक उसी प्रकार बौद्ध-तंत्रों के वक्ता वज्रसत्व बुद्ध हैं। अनेक बौद्ध-तंत्र भी संस्कृत भाषा में रचित हैं और उनकी संख्या भी अनेक हैं। बौद्ध-तंत्रों में प्रमुख हैं :—

१. प्रमोद महायुग, २. परमार्थ सेवा, ३. पिंडी क्रम, ४. सम्पुटोद्‌भव, ५. हेवज्र, ६. बुद्ध कपाल, ७. शंबर तंत, ८. वाराही तंत्र, ९. योगाम्बर, १०. डाकिनी जाल, ११. शुक्लयमारि, १२. कृष्णयमारि, १३. पीतयमारि, १४. रक्तयमारि, १५. श्यामयमारि, १६. क्रिया संग्रह, १७ क्रिया कन्द, १८. क्रिया सागर, १९. क्रिया कल्पद्रुम, २०. क्रियार्णव, २१. क्रिया समुच्चय, २२. अभिधानोत्तर, २३. साधनमाला, २४. साधन समुच्चय, २५. साधन संग्रह, २६. साधन रत्न, २७. साधन परीक्षा, २८. साधन कल्पलता, २९. तत्वज्ञानसिद्धि, ३०. ज्ञानसिद्धि, ३१. गुह्य सिद्धि, ३२. उद्यान, ३३. नागार्जुन, ३४. योगपीठ, ३५. पीठावतार, ३६. कालवीरतन्त्र, ३७. वज्रवीर, ३८. वज्रसत्व, ३९. मरीचि, ४० तारा, ४१. वज्रधातु, ४२. विमल प्रभा, ४३. मणिकर्णिका, ४४. त्रैलोक्यविजय, ४५. सम्पुट, ४६. मर्म्मकलिका, ४७. कालचक्र, ४८. योगिनी संचार, ४९. वसुन्धरा, ५०. नैरात्म, ५१. यमान्तक, ५२. मंजुश्री, ५३. हयग्रीव, ५४. मायाजाल, ५५. वसंत तिलक।

तंत्र-साधना की विशेषता

तंत्र के आदि गुरु शिव हैं। तंत्र-शास्त्र के अनुसार धर्म का पालन ही यथार्थ में सार्वजनिक धर्म है जो सभी देशों में और सभी अवस्थाओं में मानव-समाज के लिए उपयोगी है। जैसा कि तंत्र में साक्षात् भगवान् शिव ने स्वयं कहा है कि स्वस्थ शरीर और यौवन की अवस्था में ही आध्यात्मिक उन्नति और धर्म अर्जित करने की अवस्था है। मानव नर और नारी दो रूपों में बँटा हुआ है। अकेला नर या नारी एक सम्पूर्ण सत्ता है। नारी और नर जब दोनों एक-दूसरे की ओर आकृष्ट होते हैं तब प्रणय की उत्पत्ति होती है। तब दोनों का समन्वित रूप सृष्टि-शक्ति की सत्ता के रूप में बदल जाता है और तब दोनों मिलकर पूर्ण होते हैं। इस तरह की सम्पूर्ण इकाई हो जाने पर ही व्यक्ति साधना करने का अधिकारी होता है। अकेला साधन तंत्र के अनुसार अस्वाभाविक है। स्त्री और पुरुष दोनों मोक्ष के अधिकारी हैं। नर और नारी के मिलन के परिणामस्वरूप ही इस संसार की प्रवृत्ति है और वह है प्रजा सृष्टि। शक्ति के विकास के इसी माध्यम द्वारा मोक्ष मार्ग की ओर मानव बढ़े यही तन्त्र का मार्ग है।

तंत्र-मंत्र के अनुसार साधना प्रकृति के अनुकूल हो। प्रकृति के अनुकूल होने का अर्थ यह है कि मनुष्य भोग की ओर भागता है, क्योंकि भोग मानव के लिए स्वाभाविक, सरल और आवश्यक है। इसी भोग के द्वारा साधना करने से भोग की निवृत्ति होगी और मनुष्य साधना के पथ पर अग्रसर हो सकेगा। मनुष्य के भीतर भोग की जो आकांक्षा है उसकी निवृत्ति (शांति, परितोष)

होने पर ही उसके स्थूल, स्वार्थपूर्ण अनुभव का नाश होता है और दुःखपूर्ण कर्म से मुक्ति मिलती है। जीवन सचमुच ही सच्चिदानंद शिव है और इस शिवत्व या आत्म-स्वरूप में प्रतिष्ठित होना ही साधना का अन्तिम फल है। तन्त्र में यह प्रारम्भ में ही प्रतिपादित हुआ है कि मनुष्य प्रकृति द्वारा निर्मित हुआ है। अतः प्रकृति के अनुकूल चलकर ही क्रम से उसका विकास होना उसके हित में है। इसलिए तन्त्र-शास्त्रों में बार-बार इस बात पर जोर दिया गया है कि प्रकृति के अनुकूल चलकर ही साधना की राह में आगे बढ़ना है। और निश्चय ही यह मार्ग सब लोगों के लिए सरल है।

प्रकृति के अनुकूल राह क्या है ? पंच मकार को लेकर की जाने वाली साधना को प्रकृति के अनुकूल चलने वाली साधना कहा गया है। मद्य, मांस, मत्स्य, मुद्रा और मैथुन ये पांच उपकरण ही पंच मकार हैं।

पंच मकार के विधान में अनेक लोगों को आपत्ति है। लेकिन यह भी अपने हृदय में मानना पड़ेगा कि आज की सभ्यता के छद्मवेश में हम अपने हृदय की कितनी ही गंदी प्रवृत्तियों और विचारों को अपने ही हृदय में दबाए पड़े हैं। अगर हम सच्चे हृदय से अपने ही भीतर झांकें तो क्या हम लोग अपनी ही पशु-वृत्ति और गंदे विचारों को अस्वीकार कर सकते हैं ? पृथ्वी के समस्त मनुष्य-समुदाय में गिने-चुने ही लोग होंगे जो शायद इन दोषों से मुक्त हों। प्रकृति-दत्त इन जैविक प्रवृत्तियों को सरल, स्वाभाविक और सत्य-रूप में स्वीकार करके पंच मकार के माध्यम से प्रकृति के नियमानुकूल साधना का प्रबन्ध तन्त्र-धर्म ने किया है। अपने मत के अनुसार साधारणतः जिसे मनमानी कहते हैं उस उच्छृंखल पंच मकार के भोग से तन्त्र क्या निर्दिष्ट मार्ग में नियन्त्रित रूप से पंच मकार का भोग श्रेयस्कर नहीं है ? गुरु-निर्दिष्ट पथ में पंच मकार का प्रबन्ध ऐसे रूप से नियन्त्रित है कि उसमें

उच्छृंखलता के लिए कोई स्थान नहीं है।

निर्दिष्ट मात्रा में पंच मकार के अनुसार साधना करने से प्राथमिक कोटि के तंत्र साधक के भीतर स्वस्थ, आनन्दपूर्ण व्यक्तित्व का विकास होता है। साधक के भीतर मानसिक स्थैर्य और धी-शक्ति प्रबल हो जाती है। जबरन प्रवृत्ति के पथ पर रुकावट डालकर शारीरिक स्वास्थ्य और मानसिक शक्ति को शिथिल बनाकर प्रकृति के प्रतिकूल व्यवहार करने से आत्मिक उन्नति का विनाश होता है। शरीर तत्व के साथ संगति रखते हुए ही तंत्र में साधना का विधान है। स्वस्थ शरीर और स्वस्थ मन न होने से साधन होना संभव नहीं है, ऐसी तन्त्र की मान्यता है। निरन्तर मानसिक आनन्द की अवस्था इस प्रकार की साधना का एक और प्रत्यक्ष फल है।

प्रकृति के अनुकूल साधना की क्रिया होने के कारण सब प्रकार के साधारण मानव भी इस प्रकार की साधना का प्रारंभ कर सकते हैं। भोग की प्रवृत्ति मनुष्य में जन्मजात है और त्याग की प्रवृत्ति बड़े-बड़े कष्ट से उपार्जित की जाने वाली तथा इस कारण से स्वभावतः ही जटिल है। गुरु-निर्दिष्ट पथ द्वारा पंच-मकार का भोग ही साधक को संयम के मार्ग पर पहुँचा देता है। मंत्र के द्वारा हर उपकरण का आनुष्ठानिक प्रयोग केवल गुरु से ही प्राप्त हो सकता है। प्रत्येक दिन के प्रयोग द्वारा, प्रकृति के नियम के अनुसार ही साधक को इन भोगों से अरुचि हो उठेगी। पंच मकार की इसी साधना के कुछ दिन चलने के पश्चात् साधक यह अनुभव करेगा कि वर्तमान भोग की क्रिया द्वारा उसके मन की इच्छा पूरी नहीं हो रही है। गुरु की प्रेरणा से उन्हें यह भी अनुभव होगा कि केवल इन्हीं भोगों को लेकर जीवन बिताना उसका उद्देश्य नहीं था। चिर-स्थायी सुख, वृहत्तर आनन्द और उन्नत शक्ति के अर्जन के लिए हमेशा ही साधक का हृदय उत्कंठित होगा। शक्तिमान बनने का भाव उसमें जागृत होगा।

इस शक्ति का अर्जन करने के लिए साधक पशु-भाव छोड़कर तथा पंच मकार की आसक्ति को भी छोड़कर वीर भाव का साधन करेंगे।

मानव-जीवन के चिरंतन सुख वृहत्तर आनन्द और महती शक्ति अर्जन के मार्ग में आने वाली बाधाओं को तंत्र में 'पाश' नाम से कहा गया है। इन पाशों के भेद आठ प्रकार के हैं—यथा, भूख, प्यास, डाह, डर, लाज, मान, राग और द्वेष। दूसरे इन्हें काम, क्रोध, लालच, मोह, मद और मात्सर्य, भूख, प्यास और डाह के नाम से भी कहते हैं। इन आठ पाशों द्वारा ही मानव चैतन्य-विमुख हो रहा है। यही चैतन्य हम लोगों का स्वरूप है। चैतन्य को जानने से ही हम लोग आत्म-स्वरूप में प्रतिष्ठित होंगे। पाशमुक्त होते ही मानव शिव हो जायगा। इसी अवस्था को वेदान्त में 'जीवो ब्रह्मैव नापरः' कहा गया है।

ऊपर उल्लेखित पाशों से मुक्ति पाने के लिए गुरु द्वारा निर्देशित अलग-अलग राह हैं। आनुष्ठानिक क्रिया का विषय छोड़कर हम यहां मुख्यतः दो पाशों से मुक्ति की विस्तार से आलोचना करेंगे।

डरना भी जैसा कि हम ऊपर कह चुके हैं एक पाश है। सांसारिक जीवन में इस भय ने मानव-जीवन को कैसा पंगु बना रखा है। इसे हम सब लोग जानते हैं। कारण-अकारण डरना हम लोगों को सुख और आनन्द से वंचित रखता है और परिणाम-स्वरूप हम लोगों की शक्ति को सीमित कर देता है। इसी भय (डर) नामक पाश से मुक्ति के लिए तांत्रिक साधक अमावस्या की घोर अन्धकारपूर्ण रात्रि में श्मशान में मुर्दे के ऊपर बैठकर मन्त्र का जप करते हैं। इस प्रकार की साधना के अन्त में क्या किसी प्रकार का सांसारिक और असांसारिक भय साधक को डरा सकता है? साधक इस प्रकार डर के पाश को तोड़कर शक्तिमान बन जाते हैं।

डाह हम लोगों के जीवन में एक दूसरा पाश है। इसी डाह के वशीभूत होकर हम मुक्त आनन्द से वंचित रहते हैं। इसी पाश को तोड़ने के लिए तांत्रिक साधक को तथाकथित गंदी वस्तुओं को लेकर साधना करनी पड़ती है। इस प्रकार जो साधक डाह-रूपी पाश को तोड़ डालते हैं, संसार में फिर कोई भी शक्ति उन्हें संकुचित कर नहीं रख सकती। अब साधक सभी संकीर्णताओं से ऊपर होता है और अनाविल आनन्द से उसका हृदय परिपूर्ण हो जाता है। उदारता आत्मा का स्वरूप है। उसी में वे प्रतिष्ठित हो जाते हैं।

इसी प्रकार आठ पाशों से मुक्त होने के लिए बहुत कठिन साधना की आवश्यकता होती है। सच्चे गुरु की कृपा न होने से इस कठिन साधना में सिद्धि-लाभ करना प्रायः असंभव है। वीर साधक इस साधना द्वारा जिस सिद्धि का अर्जन करते हैं और इसके परिणामस्वरूप जिस शक्ति के अधिकारी होते हैं उसका वर्णन वाणी द्वारा करना संभव नहीं है। तांत्रिक साधना के मार्ग में जो आपदायें हैं वे सिद्धि के रूप में हैं। ज्यों-ज्यों साधक एक-एक पाश से मुक्ति पाता जाता है त्यों-त्यों वह अपने भीतर महा शक्ति का विकास अनुभव करने लगता है। उससे साधक का मन विभूति पाने का लोभ करने लगता है। उस समय अनेक तांत्रिक साधक अभिचार-क्रिया की ओर विशेष रूप से आकृष्ट हो जाते हैं। प्रधान रूप से वे इन चार शक्तियों के संचालन की शक्ति उपार्जन करने में लग जाते हैं जैसे मारण, स्तम्भन, उच्चाटन और वशीकरण। इसके अतिरिक्त कुछ भूत-सिद्धियों के व्यापार की ओर भी विशेष रुचि लेते हैं। ये कार्यकलाप विशेषकर जादू विद्या के समान ही हैं। इनको देखकर स्थूल बुद्धि मनुष्य उन साधकों की ओर विशेष रूप से आकृष्ट होते हैं।

तंत्र द्वारा आत्म-ज्ञान को ही प्रमुखता दी गई है और उसी के लिए यह साधन-पथ है, अभिचार-क्रिया आदि तो गौण और

अवांतर है।

पातंजल योगदर्शन में भी आत्मतत्व के लाभ के लिए ही योग के साधन का विधान किया गया है। साथ-साथ अगर साधक को विभूति-लाभ भी होता है तो उसे इस आकर्षण में पड़कर आगे की साधना से विमुख नहीं होना चाहिए, नहीं तो वही विभूतियाँ उसके पतन का कारण सिद्ध होंगी। रजोगुणी और तमोगुणी साधक तंत्र-साधना के मार्ग पर कुछ दूर तक चलकर अभिचार-क्रिया के मार्ग पर चल पड़ते हैं। बहुत बड़े शिष्य-समुदाय का गुरु बनने का अहंकार और उन पर आधिपत्य द्वारा होने वाला सुख तथा अन्यान्य भोग के साधन उन साधकों के जीवन में प्रधान हो उठता है। मोक्ष-साधन तब उनके लिए उतना ही दूर हो जाता है। इसलिए तांत्रिक आचार्यों ने विभूति-लाभ की अवस्था के बारे में सावधान किया है।

योग्य गुरु या अच्छे साधक की सहायता न मिलने से साधक का शोचनीय अधःपतन हो जाता है। इसी विभूति लाभ की अवस्था को गुरु की कृपा से अगर साधक पार कर ले तो वह दिव्य भाव का अधिकारी बनता है।

दिव्य भाव श्रेष्ठ भाव है। इस अवस्था की प्राप्ति होने पर कोई आनुष्ठानिक क्रिया-कर्म की अब साधक को आवश्यकता नहीं रहती। यह सम्पूर्ण मानसिक व्यापार बन जाता है जिसका परिणाम समाधि अवस्था है। एक-एक निर्देशित तत्व में तब साधक समाहित हो सकते हैं। इच्छा-मात्र से ही विश्व की किसी भी वस्तु का ज्ञान प्राप्त कर लेते हैं। इन्द्रिय-ज्ञान की सीमा पार कर वे अतीन्द्रिय ज्ञान राज्य में विचरण करते हैं।

पंच मकार का तात्पर्य

साधारण दृष्टि से सर्वसम्मत नीति तथा सभ्यता की रुचि और नियम के प्रतिकूल कई व्यवहार तांत्रिक साधकों के बीच देखे जाते हैं। इस शास्त्र में मद्य, मांस, मैथुन आदि के उपभोग का विधान है और जिसमें वशीकरण और मारण आदि दूसरों के अनिष्ट साधक षट्कर्म का विधान है, उस शास्त्र के ऊपर अश्रद्धा का भाव आना स्वाभाविक है। लेकिन धैर्य और पूर्ण विवेक से अगर तन्त्र-शास्त्र के विधानों की हम आलोचना करें तो बहुत अंशों तक यह अश्रद्धा का भाव नष्ट होगा, इसमें सन्देह नहीं।

ईश्वर के नाम पर, धर्म-साधना के नाम पर देवता की आराधना के नाम पर और आध्यात्मिक उन्नति के नाम पर विशाल और विचित्र सैकड़ों तन्त्र-शास्त्र के ग्रंथों की रचना हुई है। तन्त्र-शास्त्र रचनाकारों के इसी लक्ष्य को अगर हम सामने रखकर सोचें तो यह समझ में आ जायगा कि किसी दुष्ट आचरण के समर्थन में इन विधि-विधानों की रचना कदापि नहीं की गई थी। तन्त्र की इन्हीं कुत्सित कही जाने वाली साधना द्वारा कितने ही साधकों ने सिद्धि-लाभ किया है और अमरत्व के अधिकारी हुए हैं इसे हम सब जानते हैं। श्री रामकृष्ण परमहंस, वामाक्षेपा, सर्वानन्द इत्यादि तन्त्र-साधना द्वारा सिद्ध पुरुष चिर-नमस्य हैं। जो भोग्य पदार्थ साधारणतः मनुष्य के पतन का कारण होता है तन्त्र-शास्त्र के मतानुसार अगर निर्देशित प्रक्रिया में ही उपयोग किया जाय तो ये मनुष्य को मोक्ष-मार्ग पर आगे बढ़ाने में सहायक होते हैं।

भोगयुक्त ये सभी तांत्रिक आचार उच्छृंखलता का रूप ले सकते हैं। इसके बारे में तांत्रिक आचार्यों के मन में भी आशंका का

उदय हुआ था। इसीलिए उन तांत्रिक आचार्यों ने चेतावनी दी है कि असंयम आने से ये तांत्रिक आचारसाधक को उन्नति की राह में न ले जाकर अवनति की राह में ले जायेंगे। सिर्फ भोगलिप्सा की पूर्ति के लिए जो मद्य और मैथुनादि में प्रवृत्त होंगे उनकी सजा के बारे में भी उन्होंने निर्देश किया है। 'कुलार्णव' और 'तन्त्र सार' में इसका सविस्तार उल्लेख है।

उद्देश्य जो भी क्यों न हो, एक बार भोग्य वस्तु का स्वाद पाकर भोग की लालसा दिन-प्रतिदिन बढ़ती ही रहती है। इस बात को तांत्रिक आचार्य लोग भी जानते हैं। इसीलिये उन्होंने इसकी खास हिदायत की है कि कुलमार्ग के मानने वालों के सिवा और कोई इस मार्ग पर नहीं चलेगा।

उपयुक्त गुरु के पास साधन-पद्धति का गुप्त रहस्य न जानकर इस मार्ग पर चलना समुद्र को लांघने की इच्छा करने के समान है। तलवार की धार पर चलना, शेर को अपने आलिंगन-पाश में बांधना, और सांप को गले में धारण करना कठिन कार्य है, लेकिन उससे भी कहीं अधिक कठिन तांत्रिक साधना का मार्ग है।

कृपाणधारागमनाद् व्याघ्रकंठावलंबनात्।
भुजंगधारणान्नूनमशक्यं कुलवर्तनम्॥
(कुलार्णव)

तन्त्र-शास्त्र की इन स्पष्ट उक्तियों को पढ़ने के बाद क्या हम लोगों के मन में यह शंका रह सकती है कि मनुष्य को बुरे रास्ते पर ले चलने के लिए तन्त्र-शास्त्र की रचना हुई है।

तन्त्र-शास्त्र में पंच मकार के आध्यात्मिक अर्थ का भी वर्णन किया गया है—

जैसे निर्विकार-निरंजन परमब्रह्म का ज्ञान ही आनन्दमय मद्य है। पूर्ण रूप से आत्म-समर्पण का नाम मांस है। कुल कुंडलिनी शक्ति के साथ शिव का काल्पनिक संयोग मैथुन है।

यदुक्तं परमं ब्रह्म निर्विकारं निरंजनम्।

तस्मिन प्रमदनं ज्ञानं तन्मद्यं परिकीर्तितम्॥
मां सनोति हि यत् कर्म्म तन्मांसं परिकीर्तितम्।
न च कायप्रतीकन्तु योगिभिर्मांसमुच्यते।
कुल कुंडलिनी शक्ति देहिनां देह धारिणी।
तया शिवस्य संयोगो मैथुनं परिकीर्तितम्॥ (विजय तन्त्र)

पाशमुक्त साधक पूर्ण ज्ञान का अधिकारी होने के बाद ही पंच मकार के तात्विक रूप को पूर्णरूपेण समझ पाता है। फिर अपने-आप ही इन तात्विक रूपों के ज्ञान से साधक अन्तर्मन से प्रकाशित हो जाता है। वस्तुतः वीर भाव के साधक ही पंच मकार को लेकर साधना करने के अधिकारी हैं। दिव्य भाव के साधक को पंच मकार के स्वरूपतः प्रयोजन की आवश्यकता नहीं होती। उनके लिए पंच मकार के आध्यात्मिक या तात्विक रूप का विधान हुआ है। दुर्बलचित्त और असंयमी पशुभाव के साधक के लिए भी पंच मकार का स्वरूपतः व्यवहार निषिद्ध हो चुका है। वे मद्य के बदले नारियल का पानी और दूध, मत्स्य के बदले रक्तमूलक तिल और मसूर का व्यवहार करेंगे। मांस के बदले, नमक, लहसुन और अदरक हैं। 'मुद्रा के हिसाब से वे तंडुल आदि को ग्रहण करेंगे। मैथुन के बदले जगदम्बा के चरण-कमलों में आत्म-समर्पण करेंगे।

मगर शास्त्र-निर्देश तथा गुरु-वचन के अनुसार पंचमकार का मात्रा के अनुसार सेवन क्या सभी साधकों द्वारा संभव है? दुर्बल चित्त और असंयमी व्यक्ति का भोगासक्ति की लहरों में बह जाना ही स्वाभाविक है। मार्गच्युत होकर बहुत साधक मद्य-मांसादिक के अधिकाधिक व्यवहार में लिप्त होकर उच्छृंखल जीवन बिताते थे और आज भी बिताते हैं। अनेक अदीक्षित व्यक्ति भी तन्त्र-साधना के नाम पर मद्य इत्यादि का पान करते हैं। इस तरह के लोगों को देखकर ही तन्त्र-शास्त्र के ऊपर जन-साधारण को अश्रद्धा हो गई थी। तब से हर तांत्रिक साधक ही अवज्ञा और अश्रद्धा का पात्र बन गया है।

तंत्र-कवच-स्तोत्र

तांत्रिक साहित्य अपने-आपमें अत्यन्त महत्त्वपूर्ण एवं अलभ्य है। अधिकतर जो भी तन्त्र या मंत्र हैं, वे मौलिक हैं, और जिन्हें इनका ज्ञान है, वे सहज ही दूसरों को देते नहीं, इसीलिए लोगों को भटकने पर भी तांत्रिक ज्ञान प्राप्त नहीं होता।

मैंने इस पुस्तक में जितना भी संभव हो सकता था, जानकारी देने का प्रयास किया है। पुस्तक का कलेवर बूंद के समान है, और तांत्रिक क्षेत्र में सागर के समान, अतः पूरे सागर को एक बूंद में समाहित करना न तो अनुकूल है, और न संभव ही; फिर भी मैंने जो कुछ भी दिया है, वह पाठकों के लिए अत्यन्त लाभदायक एवं ज्ञानवर्द्धक रहेगा ही।

तंत्र-साधना के लिए मंत्र एवं कवच अत्यावश्यक हैं, जिनके माध्यम से व्यक्ति पूरी-पूरी सफलता प्राप्त कर सकता है। तंत्र-मंत्रादि में मुझे मेरे पूज्य गुरुजी से जो अटूट खजाना मिला है, उनमें से कुछ रत्न मैं आगे के पृष्ठों में बिखेर रहा हूँ, मुझे विश्वास है कि पाठक इनका समुचित प्रयोग कर अपनी कामना-पूर्ति कर सकेंगे।

उच्छिष्ट गणपति कवच सिद्धिप्रद है, विघ्नों के नाश करने, अटूट लक्ष्मी प्रदान करने व जीवन में पूर्णता के लिए इससे बढ़कर कोई कवच नहीं। बगलामुखी कवच तो विश्व-विख्यात है, जो शत्रुओं के संहार में व मुकदमों में विजय-प्राप्ति के लिए रामबाण के समान व अमोघ कहा जाता है। इसके प्रयोग के बाद व्यक्ति असंभव से असंभव मुकदमे को भी जीत में बदल सकता है, यह मेरा व्यक्तिगत अनुभव है।

इन्द्राक्षी स्तोत्र सब प्रकार की कामनाओं की सिद्धि के लिये अत्यन्त श्रेष्ठ माना गया है, और यह स्तोत्र सामान्यतः सुलभ नहीं होता। जिस व्यक्ति को किसी भी प्रकार की कामना हो उसे इस स्तोत्र का पाठ करना चाहिए।

आगे के पृष्ठों में मैं कुछ दुर्लभ एवं अमूल्य कवच दे रहा हूं, मुझे विश्वास है कि इससे पाठक निश्चय अपने-आपको लाभान्वित कर सकेंगे।

अथ उच्छिष्ट गणेश कवच प्रारम्भ :

देव्युवाच—

'देवदेव जगन्नाथ सृष्टिस्थितिलयात्मक। विना ध्यानं विना मंत्रं विना होमं विना जपम्। येन स्मरणमात्रेण लभ्यते चाशु चिंतितम्। तदेव श्रोतुमिच्छामि कथयस्व जगत्प्रभो।'

ईश्वर उवाच—

शृणु देवि प्रवक्ष्यामि गुह्याद्गुह्यतरं महत्।
उच्छिष्टगणनाथस्य कवचं सर्वसिद्धिदम्॥
अल्पायासैर्विना कष्टैर्जपमात्रेण सिद्धिदम्।
एकांते निर्जने रण्ये गह्वरे च रणागंणे॥
सिंधुतीरे च गंगायाः कूले वृक्षतले जले।
सर्वदेवालये तीर्थे लब्ध्वा सम्यग् जपं चरेत्॥
स्नानशौचादिकं नास्ति नास्ति निर्बंधनं प्रिये।
दारिद्र्यांतकरं शीघ्रं सर्वतत्वं जनप्रिये॥
सहस्रशपथं कृत्वा यदि स्नेहोऽस्ति मां प्रति।
निंदकाय कुशिष्याय खलाय कुटिलाय च॥
दुष्टाय परशिष्याय घातकाय शठाय च।
वंचकाय वरघ्नाय ब्राह्मणीगमनाय च॥
अशक्ताय च क्रूराय सगुरुद्रोहरताय च।
न दातव्यं न दातव्यं न दातव्यं कदाचन॥

गुरु मक्ताय दातव्यं सच्छिष्याय विशेषतः ।
तेषां सिध्यति शीघ्रेण ह्यन्यथा न च सिध्यति ॥
गुरुसंतुष्टिमात्रेण कलौ प्रत्यक्षसिद्धिदम् ।
देहोच्छिष्टैः प्रजप्तव्यं तथोच्छिष्टैर्ममहामनुः ॥
आकाशे च फलं प्राप्तं नान्यथा वचनं मम ।
एषा राजवती विद्या विना पुण्यं न लभ्यते ॥
अथ वक्ष्यामि देवेशि कवचं मंत्रपूर्वकम् ।
येन विज्ञानमात्रेण राजभोगफलप्रदम् ॥
ऋषिर्मे गणकः पातु शिरसि च निरंतरम् ।
त्राहि मां देवि गायत्रीछन्दो ऋषिः सदा मुखे ॥
हृदये पातु मां नित्यमुच्छिष्टगणदेवता ।
गुह्ये रक्षतु तद्बीजं स्वाहा शक्तिश्च पादयोः ॥
कामकीलकसर्वांगे विनियोगश्च सर्वदा ।
पार्श्वद्वये सदा पातु स्वशक्ति गणनायकः ॥
शिखायां पातु तद्बीजं भ्रूमध्ये तारबीजकम् ।
हस्तवक्रश्च शिरसि लंबोदरो ललाटके ॥
उच्छिष्टो नेत्रयोः पातु कर्णौ पातु महात्मने ।
पाशांकुशमहाबीजं नासिकायां च रक्षतु ॥
भूतीश्वरः परः पातु आस्यं जिह्वां स्वयं वपुः ।
तद्बीजं पातु मां नित्यं ग्रीवायां कंठदेशके ॥
गं बीजं च तथा रक्षेत्तथा त्वग्रे च पृष्ठके ।
सर्वकामश्चहृत् पातु पातु मां च करद्वये ॥
उच्छिष्टाय च हृदये वह्निबीजं तथोदरे ।
मायाबीजं तथा कट्यां द्वौ ऊरू सिद्धिदायकः ॥
जंधायां गणनाथश्च पादौ पातु विनायकः ।
शिरसः पादपर्यन्त मुच्छिष्टगण नायकः ॥
आपादमस्तकांते च उमापुत्रश्च पातु माम् ।
दिशोऽष्टौ च तथाकाशे पाताले विदिशाष्टके ॥

अहर्निशं च मां पातु मदचंचललोचनः ।
जलेऽनले च संग्रामे दुष्टकारा गृहे वने ॥
राजद्वारे घोरपथे पातु मां गणनायकः ।
इदं तु कवचं गुह्यं मम वक्त्राद्विनिर्गतम् ॥
एकांते प्रजपेन्मंत्रं कवचं युक्तिसंयुतम् ।
इदं रहस्यं कवचमुच्छिष्टगणनायकम् ॥
सर्वकर्मसु देवेशि इदं कवचनायकम् ।
एतत् कवचमाहात्म्यं वर्णितुं नैव शक्यते ॥
धर्मार्थकाममोक्षं च नानाफलप्रदं नृणाम् ।
शिवपुत्रः सदा पातु पातु मां च सुरार्चितः ॥
गजाननः सदा पातु गणराजश्च पातु माम् ।
सदाशक्तिरतः पातु पातु मां कामविह्वलः ॥
सर्वाभरणभूषाढ्यं पातु मां सिंदुरार्चितः ।
पंचमोदकरः पातु पातु मां पार्वतीसुतः ॥
पाशांकुशधरः पातु पातु मां च धनेश्वरः ।
गदाधरः सदा पातु पातु मां काममोहितः ॥
नग्ननारीरतः पातु पातु मां च गणेश्वरः ।
अक्षयं वरदः पातु शक्तियुक्तः सदाऽवतु ॥
भालचंद्रः सदा पातु नानारत्नविभूषितः ।
उच्छिष्टगणनाथश्च मदाघूर्णितलोचनः ॥
नारीयोनिरसास्वादः पातु मां गजकर्णकः ।
प्रसन्नवदनः पातु पातु मां भगवल्लभः ॥
जटाधरः सदा पातु पातु मां च किरीटिकः ।
पद्मासनस्थितः पातु रक्तवर्णश्च पातु माम् ॥
भगनासामदोन्मत्तः पातु मां गणदेवतः ।
वामांगे सुन्दरीयुक्ता पातु मां मन्मथप्रभुः ॥
क्षेत्रपः पिशितं पातु पातु मां श्रुतिपाठकः ।
भूषणाढ्यस्तु मां पातु नानाभोगसमन्वितः ॥

स्मितानन: सदा पातु श्रीगणेशकुलान्वित: ।
श्रीरक्तचंदनमय: सुलक्षणगणेश्वर: ॥
श्वेतार्कगणनाथश्च हरिद्रागणनायक: ।
पारभद्र गणेशश्च पातु सप्तगणेश्वर: ॥
प्रवालकगणाध्याक्षो गजदंतो गणेश्वर: ।
हरबीजगणेशश्च भद्राक्षगणनायक: ॥
दिव्यौषधि समुद्भूतो गणेशश्चिंतितप्रद: ।
लवणस्य गणाध्यक्षो मृत्तिकागणनायक: ॥
तंडुलाक्षगणाध्यक्षो गोमयश्च गणेश्वर: ।
स्फटिकाक्षगणाध्यक्षो रुद्राक्षगणदेवत: ॥
नवरत्नगणेश्च आदिदेवो गणेश्वर: ।
पंचाननश्चतुर्वक्त्र: षडाननगणेश्वर: ॥
मयूरवाहन: पातु पातु मां मूषकासन: ।
पातु मां देवदेवेशः पातु मामृषिपूजितः ॥
पातु मां सर्वदा देवो देवदानवपूजितः ।
त्रैलोक्यपूजितो देव: पातु मां च विभु: प्रभु: ॥
रंगस्थं च सदा पातु सागरस्थं सदाऽवतु ।
भूमिस्थं च सदा पातु पातालस्थं च पातु माम् ॥
अंतरिक्षे सदा पातु आकाशस्थं सदाऽवतु ।
चतुष्पथे सदा पातु त्रिपथस्थं च पातु माम् ॥
बिल्वस्थं च वनस्थं च पातु मां सर्वतस्तनुम् ।
राजद्वारस्थितं पातु पातु मां शीघ्रसिद्धिद: ॥
भवानीपूजित: पातु ब्रह्माविष्णु शिवार्चित: ।
इदं तु कवचं देवि पठनात्सर्वसिद्धिदम् ॥
उच्छिष्टगणनाथस्य समंत्रं कवचं परम् ।
स्मरणाद्भुभुजत्वं च लभते सांगता ध्रुवम् ॥
वाच:सिद्धिकरं शीघ्रं परसैन्यविदारणम् ।
प्रातर्मध्याह्नसायाह्ने दिवा रात्रौ पठेन्नर: ॥

चतुर्थ्यां दिवसे रात्रौ पूजने मानदायकम् ।
सर्वसौभाग्यदं शीघ्रं दारिद्र्यार्णवघातकम् ॥
सुदारसुप्रजासौख्यं सर्वसिद्धिकरं नृणाम् ।
जलेऽथवाऽनलेऽरण्ये सिंधुतीरे सरित्तटे ।
श्मशाने दूरदेशे च रणे पर्वतगह्वरे ॥
राजद्वारे भये घोरे निर्भयो जायते ध्रुवम् ।
सागरे च महाशीते दुर्भिक्षे दुष्टसंकटे ॥
भूतप्रेत पिशाचादियक्षराक्षसजे भये ।
राक्षसी यक्षिणीक्रूरा शाकिनी डाकिनीगणा: ॥
राजमृत्युहरं देवि कवचं कामधेनुवत् ।
अनंतफलदं देवि सति मोक्षं च पार्वति ॥
कवचेन विना मंत्रं यो जपेद्गणनायकम् ।
इह जन्मनि पापिष्ठो जन्मांते मूषको भवेत् ॥

इति परमरहस्यं देवदेवार्चनं च कवचपरमदिव्यं पार्वती पुत्ररूपम् । पठति परमभोगैश्वर्यमोक्षप्रदश्च लभति सकलसौख्यं शक्तिपुत्र-प्रसादात् ॥

इति श्रीरुद्रयामलतंत्रे उमामहेश्वर संवादे उच्छिष्टगणेशकवच समाप्तम् ।

अथ बगलामुखी कवचम्

कैलासांचल मध्यगं पुरवहं शांतं त्रिनेत्रं शिवं ।
वामस्या कवचं प्रणम्य गिरिजा भूतिप्रदं पृच्छति ॥

पार्वत्युवाच—

देवी श्रीबगलामुखी रिपुकुलारण्याग्निरूपा च या ।
तस्याश्चाप विमुक्त मंत्रसहितं प्रीत्याऽधुना ब्रूहि माम् ॥

श्री शंकर उवाच—

देवि ! श्रीभववल्लभे ! शृणु महामंत्रं विभूतिप्रदं ।
देव्या वर्मयुतं समस्त सुखदं साम्राज्यदं मुक्तिदम् ।
तारं रुद्रवधूं विरंचि-महिला-विष्णुप्रिया-कामयुक् ।
कान्ते ! श्रीबगलानने ! मम रिपुं नाशाय युग्मं त्विति ।।
ऐश्वर्याणि पदं च देहि युगलं शीघ्रं मनोवांछितं ।
कार्यं साधय युग्मयुक्छिववधू वह्निप्रियांतो मनुः ।
कंसारेस्तनयं च बीजमपरा शक्तिश्च वाणी तथा ।
कीलं श्रीमति ! भैरवर्षिसहितं छन्दोविराट् संयुतम् ।।
स्वेष्टार्थस्य परस्य वेत्ति नितरां कार्यस्य सम्प्राप्तये ।
नानासाध्य-महागदस्य नियतं नाशाय वीर्याप्तये ।
ध्यात्वा श्रीबगलाननां मनुवरं जप्त्वा सहस्राख्यकम् ।
दीर्घैः षट्कयुतैश्च रुद्रमहिला बीजैर्निवेश्यांगकैः ।।

ध्यानम्

सौवर्णासन्-संस्थितां त्रिनयनां पीतांशुकोल्लासिनीं,
हैमाभांगरुचिं शशांक-मुकुटां सच्चम्पक-स्रग्युताम् ।
हस्तैर्मुद्गर पाशबद्ध-रसनां संबिभ्रतीं भूषणैः,
र्व्याप्तांगीं बगलामुखीं त्रिजगतां संस्तम्भिनीं चिन्तये ।।

विनियोगः

ओ३म् अस्य श्रीबगलामुखी ब्रह्मास्त्रमन्त्रस्य भैरवऋषिर्विराट् छंदः, श्री बगलामुखी देवता, क्लीं बीजम्, ऐं शक्तिः, श्रीं कीलकं मम परस्य मनोभिलषितेष्ट-कार्यसिद्धये विनियोगः ।

ऋष्यादिन्यासः

शिरसि भैरवऋषये नमः । मुखे विराट्छंदसे नमः । हृदि बगलामुखी देवताय नमः । गुह्ये क्लीं बीजाय नमः । पादयोः ऐं शक्तये

नमः । सर्वांगे श्रीं कीलकाय नमः ।

करन्यासः

ओ३म् ह्रां अंगुष्ठाभ्यां नमः । ओ३म् ह्रीं तर्जनीभ्यां नमः । ओ३म् ह्रूं मध्यमाभ्यां नमः । ओ३म् ह्रैं अनामिकाभ्यां नमः । ओ३म् ह्रौं कनिष्ठिकाभ्यां नमः । ओ३म् ह्रः करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः ।

हृदयादिन्यासः

ओ३म् ह्रां हृदयाय नमः । ओ३म् ह्रीं शिरसे स्वाहा । ओ३म् ह्रूं शिखायै वषट् । ओ३म् ह्रैं कवचाय हुम् । ओ३म् ह्रौं नेत्रत्रयाय वौषट् । ओ३म् ह्रः अस्त्राय फट् ।

मन्त्रोद्धारः

ओ३म् ह्रीं ऐं श्रीं क्लीं श्री बगलानने ! मम रिपून् नाशय नाशय ममैश्वर्याणि देहि देहि शीघ्रं मनोवांछितकार्यं साधय साधय ह्रीं स्वाहा ।

शिरो मे पातु ओ३म् ह्रीं ऐं श्रीं क्लीं पातु ललाटकम ।
सम्बोधनपदं पातु नेत्रे श्रीबगलानने ।।१।।
श्रुति मम रिपून पातु नासिकां नाशयद्वयम् ।
पातु गण्डौ सदा मामैश्वर्याण्यन्त्यं तु मस्तकम् ।।२।।
देहि द्वन्द्वं सदा जिह्वां पातु शीघ्रं वचो मम् ।
कण्ठ देशं स नः पातु वांछितं बाहुमूलकम् ।।३।।
कार्यं साधय द्वंद्वं तु करौ पातु सदा मम् ।
मायायुक्ता तथा स्वाहा हृदयं पातु सर्वदा ।।४।।
अष्टाधिकचत्वारिंशद् दण्डाढ्या बगलामुखी ।
रक्षां करोतु सर्वत्र गृहेऽरण्ये सदा मम ।।५।।
ब्रह्मास्त्राख्यो मनुः पातु सर्वांगे सर्वसंधिषु ।

मंत्रराजः सदा रक्षां करोतु मम सर्वदा ॥६॥
ओ३म ह्लीं पातु नाभिदेशं कटिं में बगलाऽवतु ।
मुखी वर्णद्वयं पातु लिंगं मे मुष्कयुग्मकम् ॥७॥
जानुनी सर्वदुष्टानां पातु मे वर्णपंचकम् ।
वाचं मुखं तथा पादं षड्वर्णा परमेश्वरी ॥८॥
जंघा युग्मे सदा पातु बगला रिपुमोहिनी ।
स्तम्भयेति पदं पृष्ठं पातु वर्णत्रयं मम ॥९॥
जिह्वां वर्णद्वयं पातु गुल्फौ मे कीलयेति च ।
पादोर्ध्वं सर्वदा पातु बुद्धि पादतले मम ॥१०॥
विनाशय पदं पातु पादांगुल्यानखानि मे ।
ह्लीं बीजं सर्वदा पातु बुद्धीन्द्रिय वचांसि मे ॥११॥
सर्वांगे प्रणवः पातु स्वाहा रोमाणि मेऽवतु ।
ब्राह्मी पूर्वदले पातु चाग्नेय्यां विष्णुवल्लभा ॥१२॥
माहेशी दक्षिणे पातु चामुण्डा राक्षसेऽवतु ।
कौमारी पश्चिमे पातु वायव्ये चापराजिता ॥१३॥
वाराही चोत्तरे पातु नारसिंही शिवाऽवतु ।
ऊर्ध्वं पातु महालक्ष्मी पाताले शारदाऽवतु ॥१४॥
इत्यष्टौ शक्तयः पान्तु सायुधाश्च सवाहनाः ।
राजद्वारे महादुर्गे पातु मां गणनायकः ॥१५॥
श्मशाने जलमध्ये च भैरवाश्च सदाऽवतु ।
द्विभुजाः रक्तवसनाः सर्वाभरणभूषिताः ॥१६॥
योगिन्यः सर्वदा पान्तु महारण्ये सदा मम ।
इति ते कथितं देवि कवचं परमद्भुतम् ॥१७॥
श्रीविश्वविजयं नाम कीर्ति-श्री-विजयप्रदम् ।
अपुत्रो लभते पुत्रं धीरं शूरं शतायुषम् ॥१८॥
निर्धनो धनमाप्नोति कवचस्याऽस्य पाठतः ।
जपित्वा मन्त्रराजं तु ध्यात्वा श्रीबगलामुखीम् ॥१९॥
पठेदिदं हि कवचं निशायां नियमात्तु यः ।

यत् यद् कामयते कामं साध्यासाध्ये महीतले ॥२०॥
तत्तत्काममवाप्नोति सप्तरात्रेण शंकरि ।
गुरुं ध्यात्वा सुरां पीत्वा रात्रौ शक्तिसमन्वितः ॥२१॥
कवचं यः पठेद् देवि ! तस्या साध्यं न किंचन ।
यं ध्यात्वा प्रजपेन्मन्त्रं सहस्रं कवचं पठेत् ॥२२॥
त्रिरात्रेण वशं याति मृत्युं, तं नात्र संशयः ।
लिखित्वा प्रतिमां शत्रोः सतालेन हरिद्रया ॥२३॥
लिखित्वा हृदि तन्नाम तं ध्यात्वा प्रजपेन्मनुम् ।
एकविंशद्दिनं यावत् प्रत्यहं च सहस्रकम् ॥२४॥
जप्त्वा पठेतु कवचं चतुर्विंशतिवारकम् ।
संस्तम्भो जायते शत्रोर्नाऽत्र कार्या विचारणा ॥२५॥
विवादे विजयस्तस्य संग्रामे जयमाप्नुयात् ।
श्मशाने च भयं नास्ति कवचस्यप्रभावतः ॥२६॥
नवनीतं चाऽभिमन्त्र्य स्त्रीणां दद्यान् महेश्वरि ।
वन्ध्यायां जायते पुत्रो विद्या-बल-समन्वितः ॥२७॥
श्मशानांगारमादाय भौमे रात्रौ शनावथ ।
पादोदकेन स्पृष्ट्वा च लिखेल्लोह-शलाकया ॥२८॥
भूमौ शत्रोः स्वरूपं च हृदि नाम समालिखेत् ।
हस्तं तद्धृदये दत्वा कवचं तिथि वारकम् ॥२९॥
ध्यात्वा जपेन्मन्त्रराजं नवरात्रं प्रयत्नतः ।
म्रियते ज्वरदाहेन दशमेऽह्नि न संशयः ॥३०॥
भूर्जपत्रेष्विदं स्तोत्रमष्टगन्धेन संलिखेत् ।
धारयेद्दक्षिणं बाह्वो नारी वामभुजे तथा ॥३१॥
संग्रामे जयमाप्नोति नारी पुत्रवती भवेत् ।
ब्रह्मास्त्रादीनि शस्त्राणि नैव कृन्तन्ति तं जनम् ॥३२॥
सम्पूज्य कवचं नित्यं पूजायाः फलमालभेत् ।
बृहस्पतिसमो वाऽपि विभवे धनदोपमः ॥३३॥
कामतुल्यश्च नारीणां शत्रूणां च यमोपमः ।

कवितालहरी तस्य भवेद् गंगाप्रवाहवत् ।।३४।।
गद्य-पद्यमयी वाणी भवेद् देवी प्रसादतः ।
एकादशशतं यावत्पुरश्चरणमुच्यते ।।३५।।
पुरश्चर्याविहीनं तु न चेदं फलदायकम् ।
न देयं परशिष्येभ्यो दुष्टेभ्यश्च विशेषतः ।।३६।।
देयं शिष्याय भक्ताय पंचत्वं चाऽन्यथाऽप्नुयात् ।
इदं कवचमज्ञात्वा भजेद् यो बगलामुखीम् ।
शतकोटि जपित्वाऽपि तस्य सिद्धिर्न जायते ।।३७।।
दाराढ्यो मनुजोऽस्य लक्षजपतः प्राप्नोति सिद्धि परां
विद्यां श्रीविजयं तथा सुनियतं धीरं च वीरं वरम् ।
ब्रह्मास्त्राख्यमनुं विलिख्य नितरां भूर्जेष्टगन्धेन वै
धृत्वा राजपुरं व्रजन्ति खलु ये दासोऽस्ति तेषां
नृपः ।।३८।।

अथ इन्द्राक्षी स्तोत्रम्

श्री गणेशायनमः ।। ओ३म् अस्य श्री इन्द्राक्षी स्तोत्र मन्त्रस्य सहस्राक्ष ऋषिः ।। इन्द्राक्षी देवता ।। अनुष्टुप छन्दः ।। महालक्ष्मी बीजम् ।। भुवनेश्वरीति शक्तिः ।। भवानीति कीलकम् ।। ओ३म् श्रीं ह्रीं क्लीं इति बीजानि ।। मम सर्वाभीष्टसिद्ध्यर्थे श्रीमदिन्द्राक्षीस्तोत्र जपे विनियोगः ।। ओ३म् माहेश्वरीत्यंगुष्ठाभ्यां नमः ।। ओ३म् महालक्ष्मीरिति तर्जनीभ्यां नमः ।। ओ३म् माहेश्वरीति मध्यमाभ्यां नमः ।। ओ३म् अम्बुजाक्षीत्यनामिकाभ्यां नमः ।। ओ३म् कात्यायनीति कनिष्ठिकाभ्यां नमः ।। ओ३म् कौमारीति करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः ।। ओ३म् इन्द्राक्षीति हृदयाय नमः ।। ओ३म् महालक्ष्मीरिति शिरसे स्वाहा ।। ओ३म् माहेश्वरीति शिखायै वौषट् ।। ओ३म अम्बुजाक्षीति कवचाय हुम् ।। ओ३म् कात्यायनीति नेत्रत्रयाय वौषट् ।। ओ३म् कौमारीत्यस्त्राय फट् ।। ओ३म् भूर्भुवः स्वरोम् इति दिग्बन्धम् ।।

पूर्वस्यां पातु मां ब्राह्मी चाग्नेय्यां तु महेश्वरी ।
कौमारी पातु याम्यै वै नैर्ऋत्यां पातु भैरवी ।।१।।
पश्चिमे पातु वाराही वायव्ये नारसिंहिका ।
कालरात्रि रुदीच्यां वा ऐशान्या सर्वं शक्तिधृक् ।।२।।
ऊर्ध्वं मे भैरवी पातु चाधऽऽस्यं विध्यवासिनी ।
यद्यत्तु विषमं स्थानं तत्तद्रक्षतु चेश्वरी ।।३।।

ध्यानम्

इन्द्राक्षीं द्विभुजां देवीं पीत वस्त्रद्वयान्विताम् ।
वाम हस्ते वज्रधरां दक्षिणेन वर प्रदाम् ।।१।।
इन्द्राक्षीं युवतीं देवीं नानालंकार भूषिताम् ।
प्रसन्नवदनाम्भोजामप्सरोगणसेविताम् ।।२।।
द्विभुजां सौम्यवदनां पाशांकुश धरां पराम् ।
त्रैलोक्य मोहिनीं देवीमिन्द्राक्षीं नाम कीर्तिताम् ।।३।।

अथ मन्त्रः

ओ३म् ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं क्लूं इन्द्राक्ष्यै नमः ।।

इन्द्र उवाच—

इन्द्राक्षी नाम सा देवी दैवतैः समुदाहृता ।।
गौरी शाकंभरी देवी दुर्गानाम्नीति विश्रुता ।।४।।
कात्यायिनी महादेवी चंद्र घंटा महातपा ।
सावित्री सा च गायत्री ब्रह्माणी ब्रह्म वादिनी ।।५।।
नारायणी भद्रकाली रुद्राणी कृष्णपिंगला ।
अग्निज्वाला रौद्रमुखी कालरात्रिस्तपस्विनी ।।६।।
मेघश्यामा सहस्राक्षी मुक्तकेशी जलोदरी ।
महादेवी मुक्तकेशी घोररूपा महाबला ।।७।।
अजिता भद्रदा नन्दा रोगहन्त्री शिवप्रिया ।

शिवदूती कराली च प्रत्यक्षा परमेश्वरी ॥८॥
सदासंमोहिनी देवी सुन्दरी भुवनेश्वरी ।
इन्द्राक्षी इन्द्ररूपा च इन्द्रशक्तिः परायणा ॥९॥
महिषासुरसंहर्त्री चामुण्डा गर्भदेवता ।
वाराही नारसिंही च भीमा भैरव नादिनी ॥१०॥
श्रुतिः स्मृतिर्धृतिर्मेधा विद्या लक्ष्मीः सरस्वती ।
अनन्ता विजया पूर्णा मानस्तोकापराजिता ॥११॥
भवानी पार्वती दुर्गा हेमवत्यम्बिका शिवा ।
एतैर्नामशतैर्दिव्यैः स्तुता शक्रेण धीमता ॥१२॥
आयुरारोग्य मैश्वर्यं वित्तं ज्ञानं यशो बलम् ।
नाभि मात्रे जले स्थित्वा सहस्र परिसंख्यया ॥१३॥
जपेत्स्तोत्रमिदं मन्त्रं वाचां सिद्धिर्भवेत्ततः ।
अनेन विधिना भक्त्या मन्त्रसिद्धिश्च जायते ॥१४॥
संतुष्टा च भवेद्देवी प्रत्यक्षा सम्प्रजायते ।
शतमावर्तयेद्यस्तु मुच्यते नात्र संशयः ॥१५॥
आवर्तनसहस्रेण लभते वांछित फलम् ।
सायं शतं पठेन्नित्यं षण्मासात्सिद्धिरुच्यते ॥१६॥
चारे व्याधि भयस्थाने मनसा ह्यनुचिन्तयन् ।
संवत्सरमुपाश्रित्य सर्वकामार्थ सिद्धये ॥१७॥

● ● ●

- राजेन्द्र यादव

मिसेज़ तेजपाल 3.00

मन्त्र-विद्ध 3.00

- भैरवप्रसाद गुप्त

उसका मुजरिम 3.00

- अमृता प्रीतम

इक्कीस पत्तियों का गुलाब 3.00

- ताराशंकर बन्द्योपाध्याय

नागिन कन्या 4.00

- विभूतिभूषण बन्द्योपाध्याय

अमर प्रेम 4.00

- नारायण सान्याल

सत्यकाम 4.00

- आशुतोष मुखर्जी

सफर 4.00

- खदीजा मस्तूर

आँगन 3.00

- ए० हमीद

शहर और गलियाँ 3.00

- गौरकिशोर घोष

सगीना 3.00

- रामानन्द सागर

ललकार 4.00

- बलराज साहनी

यादें 3.00